स्त्री के रूप

लक्ष्मण 'सोमित्र'

सूर्य प्रकाशन मन्दिर
बीकानेर

लक्ष्मण 'सौमित्र'

प्रकाशक
सूद प्रकाशन मंदिर
बिस्सा का चौक
बीकानेर

मूल्य तीन रुपये

प्रथम संस्करण
१९६७

पृष्ठ संख्या =+१०==११६

मुद्रक
पवन आर्ट प्रेस
बीकानेर

STREE KE ROOP : A Short Story Collection by
Laxman Saumitra Price 3 00

स्त्री के रूप

—, रानी, ऊषा और   को ।

प्रस्तावना

मुझे कुछ ऐसा लग रहा है, जैसे शहर की जिन्दगी एकाएक ही वाष्प होकर किसी एकादश खण्डी पारदर्शी कीप के माध्यम से बहनी आरम्भ हो गई है। साड़िया, लैवेण्टर, लिपिस्टिक, रूज, वैनिटी बैग और धूपिया चश्मे– ये जैसे रूप हीन होकर उस एकादश खटी साचे मे ढल गये है। कोई भी व्यक्ति यदि शहर का है, रूमान और यथार्थ की जिन्दगी से जिसका तनिक भी परिचय है, प्रेम और वासना को जिसने दबा अथवा भोगा है, वह इनकी लपट और इनके अभिषेक से बचकर नहीं जा सकता। लक्ष्मण का कहानीकार यथार्थ की ऐसी ही सत्याग्रही स्थिति का मुखापेक्षी है। राधा, मार्था, सरला, निशा और रीता—ये कुछ ऐसी इकाइया है जिनसे आपका प्रणय और रोमास जीवित है, जीवेषणा उजागर है, और कुंठा मूर्तिमान। मिना इस्माइल रोड, कुतुब, ओखले, गेलार्ड, नीरोन और विश्वविद्यालय की चौहद्दी—इनमे यदि कहीं भी कोई विशिष्ट भाव भगिमा वाली, अति साधारण या असाधारण, मुखर, वाचाल अथवा आभिजात्य कोई सज्ञा गतिमान लगे तो आप पाएंगे कि आप लक्ष्मण सौमित्र के माध्यम से उनसे परिचित हो रहे है।

कहानी जीवन मे न तो घटी है, न जीवन कहानी से। और जो लोग आज तक कला के नाम पर प्रकारान्तर से इन्हे ऐसा मानते रहे है, लक्ष्मण सौमित्र उनके लिये एक 'आतक क्षेत्र' का काम करते हैं। प्रस्तुत सग्रह की ग्यारहों कहानिया पढने

से यही लगता है जैसे रोमांस, वासना, कुंठा और प्रेम इन सबका अपना एक अलग विश्व है, उस विश्व की सीमा में एक बार पदक्षेपण करने के बाद हमें लगता है जैसे हमें एकाएक ही एक स्टाप से दूसरे स्टाप तक जाती हुई किसी ऐसी ट्राम में चढ़ा दिया गया हो, जिसमें कहीं रुकावट नहीं है। किसी प्रवाह में डाल दी गई नाव की भांति जब तक तट न मिले तब तक हम सौमित्र के कथा शिल्प के साथ बहना होगा।

मैं लक्ष्मण सौमित्र की तुलना किसी फ्रेन्च, अमरीकी अथवा रूसी कथाकार से करके उसकी अपनी मौलिकता को सीमित नहीं करना चाहता, क्योंकि उनके लिये यथार्थ केवल कहानी का यथार्थ न होकर जीवन का यथार्थ है। एक ऐसा यथार्थ जिसको मन और हृदय, धड़कन और मांस, रक्त और मांस के सूक्ष्मतम तन्तुओं से बुना गया है। और इस आधार पर वे हिन्दी के किसी भी कथाकार से लोहा ले सकते हैं।

इस कथा संग्रह का चुनाव कदाचित लक्ष्मण सौमित्र की उन शताधिक कहानियों में से हुआ है, जो उन्होंने पिछले छः वर्षों में लिखी हैं तथा इनमें से चुनी गई ये कहानियां स्त्री के नाना रूपों और बहुमुखी चरित्र को अत्यन्त ही संजीदगी के साथ हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती हैं। कहानी के क्षेत्र में लक्ष्मण सौमित्र का स्थान ऐसे निस्पृह, अनासक्त और तटस्थ कलाकार के रूप में है, जो क्षणजीवी अथवा अल्पावधि जीवित रहने वाले शिविरान्दोलनों की नियोजी चमक से ऊपर है।

मैं उनके इस प्रथम प्रकाशित किन्तु फिर भी अत्यधिक प्रत्याशी (Prospective) कथा संग्रह का स्वागत करता हूँ।

—प्रकाश परिमल

एक

कल की डाक से एक लिफाफा आया है बिना चिट्ठी का। लिफाफे के अन्दर किसी भी चिट्ठी से अधिक मन को उकसा देने वाले मेरे तो चित्र हैं—मेरे अपने ही जिन्हें मैं कल शाम ही से देख रहा हूं। कितना कुछ है इन चित्रों के अन्दर। सबका सब जीवन्त इतिहास हो जैसे। कल शाम से अब तक की दुपहरिया के इन अठारह घण्टों की इतनी लम्बी अवधि में मैंने सिर्फ एक ही बात सोची है—एक ही बात को रात के आठ घण्टे की उनींदी नींद के सपनों में देखा है। और बस इन चित्रों के वापस लौट आने का मतलब समझने का प्रयत्न भर किया है उल्टे सीधे ढेर सारे अर्थ लगा लगा कर, सन्दर्भ जोड़ जोड़ कर। आज मेरे अपने चित्र ही मुझसे घण्टों बात करते रहे हैं पता नहीं क्या क्या मुझे समझाते रहे हैं। पिछले अठारह घण्टों में एक क्षण के लिए भी चुप नहीं रहे हैं। इन चित्रों से सम्बन्धित सारे फ्लैशबैक एकदम साफ सुथरे होकर मेरी आंखों के सामने आए हैं—एक शृंखलाबद्ध कहानी बन कर, जो किसी उजले दिन की रोशनी की तरह साफ और पक्के बर्फ की भांति सफेद और चमकदार है। मुझे आश्चर्य होता

कायम है। कलाकार हू तो अपने घर म—उसके डाइ ग-रूम को मेरे एस्थटिक स स म सजन की जरूरत कभी भी नही हुई है। उवशी वाल कलण्डर की कलर स्कीम, कमरे की सजावट से कही भी मेल नही खाती। मगर मुझे यह कहा पता है कि कलर स्कीम से अधिक केलण्डर की उवशी के मन की घुटन और दद जो उसके विवश चेहरे म है, रीना को अधिक पसन्द हैं। निश्चय ही कहीं कुछ है उसम जिसने रीता के मन की भावनाओ का तात्पर्य है या कुछ और है—बहुत गहरा, जो उस चित्र और कलण्डर को आउट आव डेट हो जाने पर भी वहा लगाए हुए है। किसी की प्रम भेंट है शायद जिसे वहा से मरे हटा देने पर मुझे एकदम कृष्णानु की एकमात्र सज्ञा दिलवाती है। मैं उसे आज फिर हटाने के विचार से जब उठता हूँ तो रेडियो के पास पड फोन की घण्टी बजती है। फोन पर भल्ला है। अपने आफिस स बोल रहा है—रीता से बात करना चाहता है। किचन म पडी सारी बफ पिघल कर नाली के रास्ते से बह जाती है या फिर चाय के लिए स्टोव पर चढा दूध उफन कर एक बडी कणकटु आवाज के साथ स्टोव को बुझा देत है या फिर खिडकी पर रखे आज के ताजा अखबार, हवा के झोके क साथ खिडकी से बाहर उड कर बहुत दूर—भल्ला के आफिस की ही दिशा म चल जाते हैं। किसी विरही यक्ष के मेघदूतों की ही भाति। मरा भावुक मन एक क्षण के लिए सोचता है एक बडी ऊटपटाग सी बात—शायद उनम भल्ला के लिए कोई सन्देह रीता ने डाल कर भेजा हो। मैं रुकता रहता हू—बफ का पिघल कर बहना दूध का उफन कर स्टोव को बुझाना और अखबारो का उडना। सुनता रहता हूँ—रीता का फोन पर की जाने वाली बात के हर नए प्वाइट पर हसना, मुस्कराना या फिर गम्भीर होकर कुछ देर की खामोशी म हा हूँ' कहते रहना और तब फिर एकदम से खिलखिला कर हस पडना या फिर वही रोजमर्रा वाले वाक्य— कितनी दफा समझाया है आपको, समझते क्या

नही हैं ? ऐसा नही हो सकता, (या) आपको हमेशा एक ही बात सूझती रहती है। नही, पापा ऐसी नही करेगे। रीता की हर मुस्कराहट के साथ मैं हमेशा मुस्कराना चाहता हू। हर खामोशी के साथ खामोश होकर उसके मन की बात समझना चाहता हू। मगर पता नहीं क्यो हमेशा मेरा मन रीता की ऐसी बातचीतो से किचन मे पडी बर्फ की तरह पिघलता रहता है या फिर हमेशा ही किसी खौलते दूध की तरह एकदम उफन कर किसी स्टोव को हमेशा के लिए बुझा डालना चाहता है। मैं विवश होकर अपनी कुर्सी को इधर उधर सरकाता हू और उसकी विचार शृखला को तोडने का प्रयत्न करता हू। और तब यकायक ही मुझे बातचीत के खत्म होने के सकेत मिलने लग जाते हैं। तो फिर। हा। सटरडे हा गुडीओव । हा श्योर। डेढ बजे लन्च टाइम पर। मैं उठता हू और दरवाजे की तरफ बढता हू। रीता रिसीवर रख कर मुझसे आ मिलती है खिलखिलाती है और कहती है— मोस्ट ब्यूटीफुल। ईर्ष्यालु कहीं के। और तब एकदम बात की टोन बदल कर मुझसे क्षमा याचना करती है। मेरे ईर्ष्यालु मन को ठंडा करने की एक हल्की सी खुराक देती है— 'कावकन, छोडना ये नगी है। बस घण्टा लेकर बैठ जाता है बिना कुछ कहे ही। मुझे नहीं पसन्द है यह सब। और तब मुझे अपने साथ बांध लेती है कुछ क्षण के लिए। और मेरा मन वागिग हो जाता है। मुझे अपनी इस दुर्बलता पर खीझ होती है। अपनी इस विवशता पर क्रोध आता है। और मैं कहता हू अपने आप मे— गुलाम है आदमी तक सुनी औरत का। उसके हाथ की अंगुलियो मे बधी एक कठपुतली है बस। और मैं रोजमर्रा का ही भाति घर के पानी का शरबत पीकर ही ठण्डा हो जाता हूँ या फिर स्टोव पर रखे पात्र मे गर्म न हुए दूध की बनी स्ट्राग काफी पीकर अपने आपको ताजा महसूस करने लगता हूँ। यह दुस्तक लाता है और मैं उस टुमथ बदर और काल मार्क्स के सामाजिक दर्शन समझाना शुरू कर देता हूँ।

अपनी हीनता, अपनी दुर्बलता और अपनी विवशता के प्रसग मे मैं सोचता हू—आदमी एक मकनिकल रोबट से बढ कर और क्या है स्त्री के हाथो।

उसका उस दिन का लेशन खत्म हो जाता है और वह मुझे मुस्कराते हुए बाई बाई टाटा की ट्यूशन फीस देकर विदा कर देती है।

मैं रास्ते भर रीना के विचित्र चरित्र क सबध म सोचता चला आता हू। मुझे लगता है जिस लक्षणाय अथवा व्यजनाओं मे त्रिया चरित्र कहा जाता है वह शायद यही है। सबक लिए छलावा—जिसका मम है। मगर सबके लिए छलावा करन वाला व्यक्ति भी जीवन मे कही पहुँचता है क्या ? न पहुँच। भावी की चिन्ता स्त्री कब करती है उसके लिए तो वतमान सत्य होता है। एक एसा वतमान—जिसम उसक दोस्त हैं स्कूटर हैं, रस्त्रा है पिकनिक स्पाट है क्ल म हैं मूवी थियेटर हैं, डिपाटमटल स्टोस हैं, नियोन और मरकरी लाइटो से सज बडे बडे शो रूमो वाले बाजार है और इन सबस ऊपर, सबसे अधिक जीवन्त सत्य उसका छलावा वाला प्रम है। जिसम कभी वह मिस रीता है तो कभी मिसेज बनर्जी तो कभी मिसेज खन्ना है तो कभी फिर मिस रत्ना, उषा और भी न जान क्या क्या है ? जिसको रूज स्नो और लिपस्टिक हर सुबह अगर उस अपने शहर की हेलन क्लियोपेट्रा या नाची बनाकर पचास रुपयो वाले उस छोट से फ्लट से बाहर निकालता है तो रात क आखिरी घण्टो म, जो क्लबो को खुली खिडकियों क बन्द होने के घण्टे हैं जो रस्त्राओ की नियोन बत्तियां के एक के बाद एक, बुझने क घण्टे हैं जो इन सभी बातो स सम्बधित रीता की धीरे धीरे बन्ती जाने वाली थकान के घण्टे हैं वह किसी शेवरलेट फोड या ब्यूक म पीछे की सीट पर निढाल पडी यहा शहर से बहुत दूर बसे एकाकी स एक बहुत बडे बगले की तीसरी मंजिल के ४ न० फ्लैट मे लाई जाकर छोड दी जाती है। उसका बनर्जी या खन्ना जो गाडी को रोक कर पीछे

का दरवाजा खोलने आता है एक पार्टिंग किस के लिए नेपन ह्स्की अथवा रम की बू वाला अपना मुंह उसके मुंह तक ले जाता है और एक अजीब से सुरूर वाली अपनी आवा को उसकी आंखों में डाल कर कहता है—'गुड नाइट डार्लिंग ! गुड नाइट !

ऐसी किसी भारतीय रीता के संदर्भ में मुझे 'जान ओ हारा' की एक बिटेनी बटरफील्ड ८' का ख्याल आता है जिस सच पूछा जाय तो किसी भी खन्ना, बनर्जी अथवा मुझ जैसे कलाकार-कहानीकार में व्यक्तिगत रूप से कोई रुचि नहीं है, कोई लगाव नहीं है।

चौथा फ्लैशबैक मुझे रीता के दो साल पहले के कमरे में ले जाता है जहां मेरे और उसके अलावा और कोई नहीं है। यह शायद उसकी किसी सुनियोजित योजना के ही कारण है। वह मुझे आज कोई बहुत ही गहरी बात कहने वाली है। तभी तो वह चुप है और दिनों की तरह बोलती नहीं है। आज शायद उसका मूड पढ़ने का भी नहीं है। मैं उससे ऐसे अवसरों पर सामान्यतया बिना उसके मन की बात की थाह पाए ही कुछ बहुत अच्छी अच्छी बातें कहने लग जाता हूं जिनका उसके मन पर बहुत अच्छा प्रभाव हो रहा है। वह अक्सर कहती रही है—मेरा उसका सम्पर्क मेरी इन्हीं अच्छी लगने वाली कुछ कड़वी बातों की ही वजह से तो हुआ है जो उस समय असमय एक ऐसा अजीब सा जायका देती हैं जो किसी नियमित मांसाहारी को कभी कभी शाकाहारी बनने पर मिलता है या फिर किसी गृहस्थ आदमी को कभी कभी बाजार की या होटलों की चटपटी चीजें खाने से होता है। शायद उसका कहना ठीक भी है वरना कौन है उसके सैकड़ों मित्रों भाई साहबों अथवा मिस्टरों में से जो मेरे स्तर का है जो मेरे जैसा सीधा सीधा एक निहायत खुला आदमी है जो कि अपने आपको चौबीसों घण्टे टाई सूट बूट और हैट से ढक रहता है। अथवा मैं यथा मेरा सम्पर्क इससे यों भी हो कि उसे मेरी रोमांटिक कहानियां बहुत रुचती हैं और वह जवान है

हर जवान व्यक्ति ऐसी हर कहानी को पसन्द करता है जो उस जैसे ही किसी नायक या नायिका को आधार बना कर लिखी गई है। उसके द्वारा पढ़ी जाने वाली मेरी हर कहानी की नायिका में उसे हमेशा अपनी ही छवि दिखती है जैसे मेरा ध्यान, मेरा मन प्राण सभी सिमट कर उसी एक बिन्दु के साथ हमेशा हमेशा के लिए सम्बद्ध हो गया हो। सभी शायद रीता की इसी सम्पूर्णतया आत्मिक रुचि का ही परिणाम है कि आज पिछले चार सालों से मैं उसके साथ हूँ। वरना साधारण रूप से कौन लोग कलाकारों, कथाकारों को अपने मित्रों के रूप में चुनते हैं वे लोग सामाजिक प्राणी तो होते नहीं हैं।

मैं देख रहा हूं, धीरे धीरे उसे अधिकाधिक समय तक घर पर रहने की आदत पड रही है। उसकी शाम अब शहर के रेस्त्राओं में नहीं बीतती। वह सुबह ही से घर में निकल कर नहीं चली जाती है। उसे लेने के लिए रोजमर्रा नई नई कार भी नहीं आती। उसका फोन दिन भर पहले की भांति व्यस्त नहीं रहता और तो और उसने इन दिनों मांसाहारी खाना भी छोड दिया है। क्या है यह सब जो आदमी को इतनी जल्दी बदल सकता है? इस बुद्ध बनना का उत्तर आदमी के मन में किन परिस्थितियों की वजह से होता है? जीवन की क्षण भंगुरता को देखकर या फिर परिवर्तन स्वयं में एक तथ्य है जीवन का एक आवश्यक तत्व, इसलिए ही। रीता इन दिनों बोलती कम है सुनती अधिक है। चुप रहकर वह दिन व दिन मेरे बहुत ही निकट आती जा रही है। इतनी अधिक कि मैं उसके भीतर भी झांक सकता हूं। कभी कभी मुझे लगता है शायद यह सब किसी निकट भविष्य में आने वाले भयंकर तूफान के पहले की शांति तो नहीं है। रीता के इस व्यवहार को मैं कभी भी एक सच्चाई के रूप में ग्रहण नहीं करता, सो उस खीझ होती है। मैं पहले की ही भांति अपने नतिकतावाद से उस ओर किए रहता हूँ मगर वह उसका कोई उत्तर नहीं देती। हाँ कभी कभी कह देती है आपको विश्वास नहीं होता है क्या? मेरा प्रति प्रश्न—क्यों हां?

उसे फिर एक लम्बे अर्से के लिए चुप कर देता है। और अब भी मैं पहले की ही भांति उसे ताने मारता रहता हूँ। उससे जब अधिक बोला और सुना नही जाता तो वह अपनी पुस्तक को एक ओर पटक कर अपनी कुर्सी से मेरी कुर्सी पर निढाल आ पड़ती है।

बस तभी अपने को चित्रों की पृष्ठभूमि में स्पष्ट दिखने वाला पाचवा फनशक मेरी आँखों के सामने आता है। आज छुट्टी का दिन है रीता के लिए और मेरे लिए भी। उसकी परीक्षाएँ धीरे धीरे नजदीक आ रही हैं। उसे इन दिनों बहुत अधिक व्यस्त रहना पड़ता न ी है रहना चाहिए। उसकी स्वयं की पढ़ाई में कभी भी रुचि नहीं रही है। वह सब तो मेरी ही प्रेरणा है। मेरा ही दबाव है। एक हालात में भी यदि उसकी रुचि अध्ययन में हो सकती है तो वह शायद मेरी उपलब्धियों से प्राप्त प्रेरणाओं के ही कारण है। जो उसको वर्तमान जिन्दगी से बिल्कुल विपरीत मेरे शैक्षणिक क्षेत्र के कुछ अभीबोगरीब सब्जबाग उसे दिखाती है। वह सोचती है। वह एम ए करेगी पी एच डी करेगी और तब पोस्ट डाक्टोरल स्टडीज के लिए विदेश जायगी, विदेशों का भ्रमण करके लौट आने पर अपने ही देश में कहीं प्राध्यापिका बनेगी। अध्यापन में उसकी रुचि है— यह मैं अच्छी तरह जानता हू।

मुझे आश्चर्य होता है यह देख कर कि वह अपनी पुस्तक पढ़ने के स्थान पर कमरे में चारों तरफ अपने एल्बम के ढेर सारे चित्र बिखरा कर उनके बीच में बैठी है सभी चित्रों की केन्द्रीभूत सन्दर्भ बन कर। अपने आपमें कुछ भूली सी रीता मेरे आगमन से चौंकती है और सारे चित्रों को समेटने के प्रयास में जब अपनी दोनों बाहें फैलाती है तो मैं उसे ऐसा करने से रोक देता हूँ। मैं इतना शुष्क हृदय तो नहीं हू कि उसकी रुचियों में बिल्कुल भी रुचि नहीं ले सकू। सभी चित्रों को एक एक करके देखता हू। अधिकांश उसके पुरुष मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियों के ही चित्र हैं। चित्रों को देख देख कर उन्हें एक एक करके रीता को देता जाता हू,

चित्र से सम्बन्धित अपने कमेन्ट्स के साथ। उन कमेन्ट्स में रीता से उन व्यक्ति-विशेषों के सम्बन्धों के भूत का विवरण, वर्तमान का विश्लेषण और भविष्य की घोषणा भी है। बहुत लोगों को मैं जानता हूँ कुछेक को व्यक्तिगत रूप से और अन्यों को रीता के माध्यम से ही।

कुछ चित्रों को वह ललचाई नजरों से देखती है तो कुछ चित्रों को उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से भी। रत्ना के चित्र को देखकर जब मैं अपनी राय देता हूँ तो वह उससे सहमत नहीं होती। वह अबकी बार चुप नहीं रहती और कह देती है—'इनमें अब मेरी कोई रुचि नहीं है। पता है, कितना परेशान किया है मुझे और जब से सुरिन्दर कौर और रत्ना की बातचीत मैंने सुनी है तब से तो बस एकदम ही मन फट सा गया है एकदम नफरत सी हो गयी है। मगर क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता है। अब की बार मैं निश्चय ही शादी के लिए आने वाले किसी भी 'ऑफर' को स्वीकार कर लूँगी अब रहा नहीं जाता है।

रीता के संग्रह में से अपने दो चित्र निकाल कर जब मैं अपने पास रखने लगता हूँ तो वह मुझसे छीन लेती है। मैं रीता को समझाता हूँ इनमें सारे भूतों में मेरा एक भूत कहाँ ठहरेगा तुम्हारे मन में? तो वह हँस देती है। भूत शब्द की द्विअर्थिक अभिव्यक्ति को समझ कर। 'रीता! या तो ये चित्र मुझे वापस लौटा दो अभी ही या फिर इन्हें फाड़ दो। इतने सारे लोगों में मैं भी रहूँ एक तरफ अनजाने, अनपहचाने रूप में — मुझे अपने लिए यह कुछ ठीक नहीं जँचता। तुम्हें इस बात की पूरी स्वतन्त्रता है कि तुम अपने परिचितों और मित्रों की सूची से मेरा नाम काट दो। उससे मुझे कोई दुःख नहीं होगा। लेकिन इसके विपरीत यदि तुम अपने लिए यह आवश्यक समझती हो कि मेरा नाम भी इन ढेर सारे नामों और सन्दर्भों के साथ रहे तो मेरी भी एक अपेक्षा है तुमसे। एक ऐसी अपेक्षा जिसे अपने व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा के

लिए मैं अत्यधिक आवश्यक मानता हूं। वह यह कि मेरा नाम और मेरे सन्दर्भ इन सभी नामों और सन्दर्भों की सूची में सबसे ऊपर रहें। एक बहुत कठिन शर्त है रीता यह, तुम चाहो तो इसे मानने से इंकार कर सकती हो।'

रीता के आत्म-सम्मान को ठेस लगती है शायद। वह मेरी बात को नहीं मना करती है। वह चुप है। मेरी शर्त उसे मंजूर है शायद क्योंकि मौन स्वीकृति का ही लक्षण होता है। तब मैं उसे कहता हूं— तो रीता फिर ये दोनों चित्र तुम न अपनी मर्जी से फाड़ोगी और न ही अपनी मर्जी से मुझे लौटा सकोगी।'

ठीक है। लेकिन आप इतने बसे क्यों हैं? कुछ भी तो समझ में नहीं आता।' मैं उससे और कुछ नहीं कहता। मैं भी कहां चाहता हूं कि वह मुझे जितना समझी हुई है उससे और अधिक भी समझे। आदमी के व्यक्तित्व में कुछ गोपनीय हो तभी तो वह आकर्षण का कारण बना रह सकता है। मैं रीता जैसे व्यक्तियों में सब कुछ सीमाएं रखना पसन्द करता हूं। तभी तो मैं उसे इससे अधिक कुछ नहीं कहता। बस कह देता हूं—एक बड़ी अजीब सी बात जो मैंने कहीं पढ़ी है मुझे एकाएक याद आती है

If I q it your arms tonight
And chance to die before it is light
I would advise you and you might
love again tomorrow

वह मुझे एकटक देखती रहती है। उसकी दृष्टि में एक क्षोभ है एक शिकायत है और है एक बहुत पुरानी मांग। मुझे लगता है जब वह कुछ कहना चाहती है। मैं जब उसे इसके लिए उकसाता हूं तो वह बोलती है—'चक्रवर्ती! मुझे रत्नाकर के गर्भ रह गया है। मैं नहीं

चाहती थी मेरी शादी हो। क्या तुम आज ही मुझसे अदालत में चल कर सिविल मैरिज कर सकोगे। फिर हम कहीं दूर चले जाएँगे। इतनी दूर जहाँ हम जानने वाला कोई न हो। सच! चक्रवर्ती मैं इस जिंदगी से अब ऊब चुकी हूँ। क्या तुम यह एहसान मुझ पर करोगे?

मैं किंकर्तव्यविमूढ़ उसके चेहरे की तरफ देखता हूँ। उसके चेहरे में काफी पुरानी बसी अपेक्षाओं की वह रेखा अब शायद मिट गई है *उसने उस माग का रुख जो दिया है।* मेरी चुप्पी उसके दिल और दिमाग के खालीपन के लिए बहुत अधिक है। लगता है, जैसे उसका वश चले तो वह अभी मुझे झिंझोड़ कर रख दे।

'रीता मैं...!' इससे पहले कि मैं संयत होकर उसे कुछ कह पाऊँ शायद वह मेरी बात को ताड़ लेती है। वह वहाँ से चली जा रही है और...

और आज कानपुर से यह बिना चिट्ठी वाला लिफाफा मुझे मिला है जिसमें मेरे ही दो चित्र हैं। कानपुर की मोहर देख कर मुझे कानपुर वाले उस खन्ना की याद आती है जिसने रीता को कभी बहुत परेशान किया है, जिसमें रीता की अब कोई रुचि नहीं है जिससे उसका मन फट सा गया है, और उसे नफरत हो गई है। ●●●

दो

लक्ष्मी

बस्ती की एक मुख्य सड़क के बीच में मैंने भी एक ठेकेदार के एक साथ लगे आठ दस कोठों में से एक कोठा किराए पर ले लिया है। मेरे शुभचिंतक लोग कहते हैं—जगह अच्छी नहीं है। मगर मैं तो सोचती हूं, इससे और अच्छी जगह कौन सी होगी, और फिर मेरे जैसी नई पेशे वाली औरत के लिए तो कम से कम। जहां बिजनेस अच्छा चलता हो वही जगह तो अच्छी होती है। मेरे कोठे के सामने से सभी प्रकार के लोग गुजरते हैं, तभी तो थोड़ा बहुत धंधा चलता है।

यहां बैठते मुझे यह तीसरा महीना है।

सोचती हूं—कुछ भी हो कैसे भी हो 'उनके' लिए तो कुछ इंतजाम करना ही पड़ेगा। कल शाम तक भी जब कोई भी ग्राहक नहीं आया था तो उस ठेकेदार के लड़के को ही (जो शायद हम लोगों से

सबने मिलकर उससे अनुरोध किया था कि आज वह उन्हें कम से कम एक एक जाम तो पिला ही दे। बेचारा गरीब इन्सान। उसके बेटे को सालगिरह के दो चार दिन पहले ही उस मिल मालिक के बच्चे ने नौकरी से निकाल दिया था। वह गरीब कहां से लाता अपने अजीज दोस्तों के लिए एक एक जाम। मगर सालगिरह की खुशी में कुछ तो होना ही था। महमूद मेरा जिगरी है उसका बेटा मेरा बेटा है तो क्या मैं अपने उस बेटे की सालगिरह में दोस्तों द्वारा मांगी गई पार्टी आयो जित नहीं कर सकता था? नहीं क्यों कर सकता था? मैंने की थी और उस साली लक्ष्मी से पैसा लाकर सबको एक एक जाम नहीं एक एक पौवा पिलाया था। साली समझती है—मैं उससे लव करता हूं। सम झती रहे, मुझे इससे क्या मतलब है? मुझे तो बिना मेहनत किए पैसा मिलता है और मिलता रहेगा। कभी कदास एक दो प्यार के शब्द कह देने में अपनी गांठ का क्या जाता है? हां, उसे पोटता हूं तो कभी कभी प्यार भी तो कर लेता हूं। मगर तब भी वह निपट गधी क्या समझती है कि हाथी के दांत खाने के और होते हैं और दिखाने के और।'

लेकिन हां मैं मित्रों के लिए इतना करता हूं तो भी मित्र क्या मुझे अक्सर कहते रहते हैं। जिनमें वह कम्बख्त किशन तो पूरा आदर्शवादी बना फिरता है। लेखकों में यह आदर्शवादी वाली खब्त होती ही है—जाने क्यों? छोड़ दूं उसकी दोस्ती, मगर नहीं छोड़ पाता चाहते हुए भी। क्योंकि वैसे दोस्त मुझे कम ही मिले हैं। वह तो मेरी सोसाइटी में रहने की बात तो और, फिर कर देने भी हम लोगों के साथ जबरदस्ती करने पर हो गया है। मगर तब भी कहता बहुत है—'अशोक तुम्हारी यह डयूअल पौलिसी ठीक नहीं है। लक्ष्मी बेचारी कितना करती है तुम्हारे लिए जान देती है मगर एक तुम हो कि तुम्हारे कानों पर जूं तक भी नहीं रेंगती। उस खूब सूरत जान

को क्या सुनाते हो ? शादी क्या नहीं कर लेते ? यह तो कहता नहीं। कहता है—'रख क्यों नहीं लेते उसे अपने पास।' तो क्या उसे मालूम पड़ गया है कि लक्ष्मी मेरी विवाहिता पत्नी है जिसे मैंने छोड़ रखा है। कह दिया होगा उस लक्ष्मी की बच्ची ने। उसी की बात में आकर दूसरे फ्रेण्डस भी कहने लग जाते हैं तुम हम लोगों में ठीक हुए तो क्या हुआ ? उसके पवित्र प्रेम को तो धोखा देकर ही हम लोगों को खिलाते हो।' शर्म आनी चाहिए, जानते हो वह तुम्हें पैसा देने के लिए ही दो दो दिनों तक भूखी भी मर लेती है।' अरे बेचारी की आंख में भी कितनी शर्म है, हम जो उधर से गुजर भी जाते हैं तो घूंघट सा कर लेता है। इतना अर्सा हो गया अभी तक नहीं समझे क्या। वह रूप में एक पवित्र आत्मा है। महादेवी है। अशोक अपनी आंखें खोलो।

ऐसा लगता है कि जैसे कंवलजीत ने सबको सामने बैठाकर अपनी दर्द भरी कहानी सुना दी हो।

लक्ष्मी

काफी दिन हो गए हैं। साथवालियों से पैसा उधार मांगते हुए अब नहीं सहा जाता। शायद रकम सैंकड़ों पर पहुँच गयी है। कुछ भी करूँ अशोक के लिए तो पैसों का इन्तजाम करना ही पड़ेगा। बस वे एक प्रसन्न हैं मुझसे तो मुझे और किसी की चिन्ता नहीं। आखिर तो मेरे भी वे दिन कभी लौटेंगे जब अशोक ने मुझसे प्यार किया था। हनीमून मनाने हम विलायत गए थे। मगर जब शादी के आठ साल बाद भी मुझे परमात्मा ने बच्चा नहीं दिया था तो बस । आगे नहीं सोचूंगी। मगर आदमी भी क्या होता है ?

आजकल तो ग्राहक आने भी बहुत कम हो गए हैं। चार २ पांच २ दिन तक कोई नहीं आता। लोग कहने लगे हैं— 'पहले सी नहीं रही, वह घूंघट वाली नहीं रही अब बुड्ढी हो गई है। दो दो रुपयों के नोट कोई रास्ते में फेंकने के लिए थोड़े ही हैं?' और हां, हो भी तो जोधपुर से नई आ गई हैं अभी तो उनके पौ बारह है।

अभी यहां जो एक दो आती हैं एक दो हफ्ते में वे भी खत्म हो जायेंगी क्योंकि अभी इन नई दोनों को भी बहुत से लोग नहीं जानते।

ये दोनों जोधपुर से आई हैं तो क्या मैं जोधपुर जाकर नई नहीं हो सकती? हो सकती हूँ, तब फिर तो अच्छी तरह से अपने मनोज को रुपए भेज सकूंगी।

— तब मनोज फिर पहले की तरह मनोज मनोज हो सकेगा। उसके लिए वे कितने अच्छे आदमी हैं।

— हां, हो सकता है अगर मैं उन्हें खुश रखूं तो शायद वे मुझे फिर रखना पसंद करेंगे।

किशन (जो) लक्ष्मी मुझे इसी नाम से पुकारती है।

मैंने लक्ष्मी को बीकानेर के ही एक प्रसिद्ध जनमार्ग पर एक कोठा लेकर बैठे देखा है। लक्ष्मी के या को देखा है उसकी नारी को देखा है। अपना व्यापार करती है। दो दो रुपए में कोई भी उसे कुछ समय के लिए खरीद सकता है—कितना घृणित काम है कैसी कुत्सित कल्पना है वह कल्पना नहीं यथार्थ है। लेकिन क्या हुआ? वह भी नारी भी है—यह कौन देखता है? उसका प्रेम कितना पवित्र है मनोज को वह अपना देवता मानती है। अपना आराध्य समझकर पूजती है उन्हें। उन्हें पैसा देने को स्वयं भले ही भूखी रह जाय मैं

आकि जो उसके अपने हैं उन्हें वह कैसे अस तुष्ट रक्खे ?

कितना पवित्र प्रेम है कितना ऊंचा आदर्श है ? यह मेरे अथवा मेरे पाठकों के अतिरिक्त और कौन समझ सकेगा वह भी एक नारी है, उसके भी एक पेट है, उसे भी एक नारी की भांति जीवन में प्रेम की भूख है।

और हां अशोक को भी देखा है। वह भी हमारे बीच का ही एक इन्सान है। सच्चा मित्र कहूँ उसे। उसने मुझे भी अपने और दोस्तों के साथ कई बार पिक्चर दिखाए हैं। मित्रता के नाते मानता हूँ उसका आभार मगर यह कहे न कहूँ कि वह दुष्ट भी है, निकम्मा इन्सान एक पेरासाइट जो दूसरों पर जीता है। कभी सुना था—"ए पेरासाइट इज वन हू लिव्ज अपान अदर्स।'

कितनी बार समझाया उसे—' क्यों बेचारी गरीब जान को मारता है ?' मगर उसे क्या उसके दिमाग में तो कुछ बैठे तब न।

अभी तक तो उसकी बात मैंने किसी को बताई नहीं है, मगर अब मुझे उम्मीद है पूरी, कि जब बात यों खुल ही गई है तो वह अपनी लक्ष्मी को फिर से अपना ही लेगा। ●●●

तीन

गुरुदेव का पत्र सुरेखा के नाम

२५-६ ६१

सुरेखा,

इतनी भीषण गर्मी में किसी भी लालच में तुम्हारी दिल्ली आने के लिए मैं सनकी नहीं था, मगर जब लाख कोशिश के बावजूद भी अपने आपको न रोक सका, तो तुम्हें बिना सूचित किए ही जयपुर से रात का आठ घण्टे का सफर तय करके दूसरे दिन दिल्ली जा पहुंचा। मनुष्य पा स और रमोश स का कितना बड़ा दास है। रवाना होने के एक सप्ताह पूर्व तुम्हारे पते पर पत्र डालकर पहले पता तो कर ही सकता था कि तुम जल्दी ही सुरेश के साथ किसी बड़े हिल स्टेशन को जा रही हो, मगर दो तीन सालों पहले की तुमसे की हुई भेंट की स्मृति और तुम्हारी राज्य सरकार कला अकादमी द्वारा, तुम्हें राज्य की सर्वश्रेष्ठ चित्रकर्त्री के सम्मान से सम्मानित

किए जाने के दनिक समाचार पत्र क ममाचार ने अम मुझे एकदम से झकझोर ही डाला। अपने काम म अधिक अवकाश न होने पर भी मैं अपने आपको रोक न पाया।

चार पाच साल पहले मेरी कही गई बात शायद तुम्हे अब जब तब याद आती होगी जब मैंने तुम्हारी अन्य सहेलियो—ऊषा, रत्ना और कचन आदि की तुलना मे तुम्हे एक बहुत अच्छा और कुशल कलाकार बताया था। तुम्हे अपनी एक योग्य छात्रा के रूप म इस सीमा तक सराहने क अतिरिक्त मैं और कर ही क्या सकता था ? तुम्हारे कला के निर्माता उन सुदर गोरे गोरे हाथो तथा हर चीज क अतस म पैठ कर सूक्ष्मतम निरीक्षण करने वाली उन नुकीली आखो की मैं और किन शब्दो म सराहना करता ? मैं भी तो चित्रकला का एक अदना प्राध्यापक ही था कोई कवि या लेखक तो था नहीं जिसे अभिव्यक्ति के नाम पर किए गए हर जुर्म से माफी होती है। अकादमी का इतना बडा पुरस्कार और सम्मान पाकर निश्चय ही तुम्हे कुछ अजीब सा लग रहा होगा मगर मैं जानता हू तुम इस सबका अनुभव करती थी। निश्चय ही एक गृहस्थिन का गृहस्थ से बाहर के किसी एक क्षेत्र म, इस प्रकार या एकदम चढ जाना, हम परम्परा वादियों को कुछ अटपटा सा जरूर लगता है मगर तुम्हारे पति का तुम्हे मिलने वाला यह प्रोत्साहन, निश्चय ही तुम्हारी इस उपलब्धि क लिए एक सौभाग्य था। वह पति भी मुरखा निश्चय ही एक साधारण पति नही है जिसका प्रोत्साहन उसकी पत्नी को गृहस्थ क बाहर के ऐसे किसी क्षेत्र म इतनी बडी उपलब्धि करा सकता है।

——मगर सुर ! तुम्हारे इस पति क बारे मे क्या कहा जाय, जिसके बारे म तुम्हारी पत्नीमित्र सहेली ने मुझे बताया है कि वह तुमसे सन्तुष्ट नहीं है। ऐसा क्यों है ? क्या

मानवो से भी कोई असतुष्ट हो सकता है ? मुझे तो समझ म नही आता क्या हो जाता है इन पतिया को ? आदमी की अपेक्षाओ की सीमा आखिर कहा तक है, क्या उससे भी आगे है कही, जहा एक पक्ष दूसरे पक्ष के सतोष क लिए अपना तन, मन धन सभी कुछ अर्पित कर देता है। भारतीय सस्कृति का नारी जाति को दिया हुआ यह दुर्भाग्य भी क्या एक पति क सतोष के लिए काफी नही है। सुरे ! मैं तुमस एक बार मिलना चाहता था। और तुम्हारी पडोसिन से हुइ मेरी बातचीत के बाद तो बस एकदम ही तुमस मिलने को बचन हो उठा था मगर विवशताओ की भी अपनी एक अलग शक्ति होती है न। तुम तो चली गई थी मै भला फिर किससे कुछ पूछता, किससे कुछ सुनता ?—जब रहा नही गया तो तुमसे कुछ सुनने भर ही के लिए अपने अ दर उमड़ते घुमडते तूफान को ठण्डा करने के लिए ही तुम्ह कुछ लिखने बठ गया हू ।

आशा है, जब तक तुम्हारे पास यह पत्र पहुँचेगा तुम दिल्ली पहुच जाओगी। तुम्ह अधिक दु खी नही कर गा, मगर एक शर्त पर कि लौटती डाक से अपनी सारी स्थिति खुलासा लिख कर मुझे भेजोगी।

अपनी अपूर्व उपलब्धि क लिए मेरी हार्दिक बधाइया और आशीर्वाद लो।

पूर्ववत् स्नेह क साथ ही—

तुम्हारा,

रवि बनर्जी

गुरेवा का पत्र ऊषा के नाम

३०-६-६१

ऊषी,

आज चार साल बाद अचानक फिर इस तरह मेरा पत्र पाकर तुम्हें आश्चर्य तो जरूर होगा, मगर वेदनाओं से ऊपर तक भर गए मन को उनके लिए कोई न कोई आउटलेट तो ढूंढना ही पड़ता है न। हर पात्र की एक निश्चित कपासिटी होती है - द्रव ठोस या गैस पदार्थ को अपने अंदर रख पाने की उस कपासिटी से अधिक डाला गया पदार्थ या तो स्वतः ही उसमें से सहज रूप में बाहर निकल पड़ता है या फिर यदि वह अवरुद्ध किया जाय तो अपनी शक्ति संगठित कर उस पात्र ही को भंग कर डालता है। वेदनाओं और रोज के नए नए उपालम्भों और तानों को सुनने वाले मेरे मन और मस्तिष्क को भी अब यही दशा हो रही है मुझे लग रहा है। शायद वेदनाओं और तानों को अपने अंदर रख पाने की अथवा सहने की उनकी कपासिटी समाप्त हो गई है या फिर उनका परिमाण अनायास ही आवश्यकता से अधिक बढ़ गया है।

ऊषी! कहते हैं दर्द कहने सुनने में हल्का हो जाता है। अंदर के तूफान को जब कोई राह मिल जाती है तो वह फिर और नहीं भड़कता। तुमसे रेस्पोंस मिले न मिले, मुझे इसकी चिंता नहीं है मगर अपने जी का यह झूठा दावा तो दे लूं।

शादी के वक्त मेरे पति के बारे में जो धारणा तुम्हारी थी वही मोटे रूप में मेरी भी थी। ऐसा सुंदर आकर्षक और हंसमुख व्यक्ति इतना दुःखदायी और शक्की भी हो सकता है यह कल्पना

मैंने स्वप्न में भी नहीं की थी। मगर अब क्या तू मेरे इस लिखने पर विश्वास कर सकेगी कि मैं यहां अपने तन और मन से पतिव्रता होकर भी अत्यधिक कष्ट में हूं।

जिन कुन्दन के से खरे चरित्र वाले और पारस से उदार परोपकारी अतिमानव गुरुदेव रविबाबू के सम्बन्ध में हम लोग कभी *स्वप्नावस्था में भी सन्देह न कर पाए उन्हीं पर दिन में हजारों बार* व्यंग्य भरे कीचड़ उछाल कर भी उन्हें चैन नहीं मिलता। मेरी हर क्रिया में उन्हें एक गम्भीर षड्यन्त्र रचा हुआ दिखता है। मेरी हर बात उन्हें धोखे और छल से भरी हुई नजर आती है। मेरे सोचने पर भी यहां प्रतिबन्ध है एक मिनट के लिए भी चुप बैठ कर गम्भीर मुद्रा में मैं रह नहीं सकती। घर हर लिखने पढ़ने पर सन्देह किया जाता है जिससे मैं घर से बाहर कहीं किसी को पत्र जैसी कोई चीज न लिख दूं विशेष कर गुरुदेव को जिनकी उनको हर पल हर वक्त आशंका रहती है। मैं घर से बाहर नहीं निकल पाती मेरे चारों तरफ पहरा रहता है। और तो और महीनों हो गए, कूची को मैंने हाथ भी नहीं लगाया। कितनी बार उनसे मिन्नतें कीं मगर वे पत्थर दिल कहां पसीजे? मिन्नतें बाहर निकलने देने की नहीं पत्र लिख पाने के लिए भी नहीं, महज चित्र बना पाने की अपने दिन भर के थके शरीर और मन को दो घड़ी कूची की खींची हुई उन रेखाओं और इन्द्र-धनुषी रंगों में डूब जाने देने भर की। मगर जाने क्यों? मुझे समझ में नहीं आता जब भी मैं अपनी इस हॉबी की कोई बात करती हूँ, वे झुंझला कर कह उठते हैं– बस झगड़ा तो इसी बात का है। मैं नहीं समझती इस बात का क्या झगड़ा हो सकता है? सिर्फ यही कि मैंने अपना हर चित्र नया या पुराना गुरुदेव को सादर भेंट कर रक्खा है। यही *बस इतना सा ही मेरा यदि कुसूर है तो मैं कुसूरवार ही*

रहना चाहती हूँ। व मुझे समझ क्यों नही पाते ? मैं नहीं मानूंगी। ऊषा ! मानिनी सुरेखा को तो तुम जाननी ही हो न। आखिर हमारी श्रद्धाओं का भी तो कोई मूल्य है न। पति को हमने अपना प्रेम दिया। अपना तन और मन सर्वस्व अर्पण किया तो क्या अपनी श्रद्धा भी अपने उन गुरुदेव के श्री चरणों में अर्पित नहीं कर सकतीं जिन्होंने हमारे बाल्य के स थाये नारीत्व को कला के स्वर दिए हमारे पोर पोर को जगा दिया, कालेज के वातावरण में निरन्तर हमारे युवा और उच्छृंखल मनों को कला के संयम और अनुशासन में बांध कर हमें किसी के योग्य बनाया। मेरी यह श्रद्धा ही यदि मेरा दोष है तो मैं दोषी ही ठीक सही। क्योंकि मुझे पता है मैंने उनके शंकालु मन को समझाने के क्या क्या प्रयत्न नहीं किए। जाने क्यों इन पतियों की शंकाओं की कोई सीमा भी नहीं है ? खास कर सी आई डी में होकर तो आदमी कभी भी एक सफल पति नहीं बन पाता।

रहा भी तो नहीं जाता इस तरह, और छोड़ने में भी निस्तार नहीं दीखता। कोई रास्ता सुझाना आभार मानूंगी।

तुम्हारी पहले सी ही—

सुरेखा

सुरेश का पत्र रॉब बनर्जी के नाम

२०-६-६१

आदरणीय तथाकथित गुरुदेव !

सादर प्रणाम ! कला के माध्यम से भोली भाली सुशील लड़कियों को फंसा फंसा कर उनके भरे पूरे घरों में आग लगाते हुए क्या आप किंचित भी नहीं सकुचाते ? मानता हूं आपकी इस अटकल-बाजी के लिए फाइन आर्ट्स, लिटरेचर या पालिटिक्स जैसे कई सुविदित

साधन आप जैसे लोगों के पास रहते हैं मगर उनका सद्गृहस्थियों का भविष्य बिगाड़ने में ऐसा उपयोग क्या ठीक है ? मैं और आप सभी जानते हैं कि कानून के पास ऐसी परोक्ष बातों के लिए प्रत्यक्ष रूप से कोई उपचार नहीं है मगर इसका यह तो अर्थ नहीं होता कि आप अपनी अच्छी भली कला का यों दुरुपयोग करें। फिर भी आई पी सी में, ऐसे अपराध के लिए तो सजा है ही जिसमें कोई किसी की पत्नी को उसके खिलाफ या अपने फेवर में फुसलाने का ऐसा प्रयत्न करता है। आपकी सूचना के लिए मैं इसे यहां बताना आवश्यक समझता हूं।

गुरुदेव ! मैं आपको सूचित कर दूं कि सुरेखा को लिखा गया २८-६-१ का आपका प्रेम पत्र उसके सौभाग्य से मुझे मिल गया है। यद्यपि उसने तो अपनी तरफ से यह कह कर कि उसके पास एक चिट्ठी आई है यदि मैं उसे देखना चाहूं तो वह मुझे दिखा सकती है भरसक प्रयत्न किया था, कि ऐसे मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करके मुझे वह आश्वस्त कर देगी कि मैं उसका वह पत्र नहीं देखूं मगर गुरुदेव आखिर तो मुझे भी इसी सो साई की कृपा से ही सत्संग करते हुए ही इस मार्ग हो गए हैं। पत्र तो मुझे देखना ही था।

मनुष्य मन में और दर्शन में कितना बड़ा दाग है। आपका पत्र साधारणीकरण से निश्चय ही बहुत बहुत जमा। जब सुरेखा का कथा प्रकाशनी भाग मिलने वाला पुरस्कार तो, आपने लिख दिल्ली मात का पत्र प्रकाश बताना हो गया था मगर मैं मानता हूं वास्तव में बात कुछ और ही थी। आप एक वक्त और कथन होकर दिल्ली जाने का पता था अब न ा है कि सुरेखा ने नि वद । इस भी तो बार पत्र आपको जिस होटि विराम उसमें आपको बुलाया जाता। इसी तरह में भी घर दिल्ली आए, और न । किंतु सुरेखा न आ सके साथ दिखता न जाने के लिए कहा कि कहने नहीं फिर-यह बता इस बार

की सूचना नहीं देता कि आपके पूर्व निश्चित कुछ कार्यक्रम थे।

कलाकार साहब! मानता हूँ, आपका सुरुचि बोध भी काफी परिष्कृत है। आपने लिखा है न सुरेखा को,

तुम्हारी कला के निर्माता उन सुन्दर सुन्दर गोरे गोरे हाथों तथा हर चीज के अन्तस में पैठ कर सूक्ष्मतम निरीक्षण करने वाली उन नुकीली आँखों की मैं और किन शब्दों में सराहना करता!

मगर यह इतना परिष्कृत सुरुचि बोध कहीं उल्टा आपकी ही जान का ग्राहक न आ बने, इस सद्भावना और सहानुभूति के साथ मैं आपको प्रथम और अन्तिम बार यह लिख देना चाहता हूँ कि भविष्य में सुरेखा से किसी भी प्रकार का मानसिक या पत्रों का सम्बन्ध आपके हित में अच्छा नहीं होगा। वैसे आप स्वयं समझदार होंगे।

आपका शुभेच्छु

सुरेन

उषा का पत्र सुरेन के नाम

७-७-६१

आदरणीय जीजाजी,

सादर नमस्कार। मेरा पत्र पाकर निश्चय ही आपको आश्चर्य होगा मगर आपके द्वारा पत्र में किए गए आश्चर्यों से वह आश्चर्य कहीं कम है। उनकी यों खुल्लम खुल्ला (बेशर्मी से) चर्चा करना मैं पहले जरूरी समझती हूँ। वय में छोटी होते हुए भी ऐसा पत्र लिखने के अपने अधिकार का प्रयोग करने की धृष्टता अवश्य ही करूँगी, आशा है क्षमा कर देंगे। आपको शायद यह जानकर अधिक आश्चर्य नहीं होगा कि पिछले पाँच दिनों से सुरेखा मेरे ही यहाँ है। अच्छा होता यदि वह आपके यहाँ ही घुट घुटकर मर जाती और मर कर भी कम से कम अपने पातिव्रत और

स्वामिभक्ति का तो सबूत दे पाती मगर कहा आपने उसके दुर्बल मन और तन में इतनी शक्ति ही कहा छोड़ी थी कि वहा रह कर अपने अंतिम क्षणों का अनीता तक कर पाती। आप जानते होंगे मगर फिर भी इस बात को दोहरा देना जरूरी है कि सुरेखा के शरीर के हर हिस्से में आपकी कृपा का कोई न कोई चिह्न है अब भी है इतने सात दिनों के बाद भी और, उसके मेरे यहा आने से लेकर उसी दिन से शहर के अच्छे से अच्छे डाक्टर से उसका इलाज कराते रहने पर भी अभी तक उसने बिस्तर नही छोड़ा है। यदि एक पति एक चरित्रवान और पतिव्रता स्त्री की अपेक्षा रखता है तो वह स्वयं क्यों एक साधारण पति नहीं रह सकता ? सुरेश बाबू शायद आपको यह पता नही है कि सुरेखा ने पिछले पाच दिनों से कुछ भी नही खाया है, महज इसलिए कि पति के खाना खाने से पहले खाने की न तो उसकी आदत ही है, और न उसे खाना भाता ही है। उसे अब अपनी जिन्दगी से जिसे आपने अकारण ही उसके लिए बोझ बना दिया है कोई भी मोह नही है। यदि उसका हर समय ख्याल न किया जाता तो वह अभागिन कभी की मर गई होती मगर शायद आपको पता नही है कि वह सिर्फ आप ही के एक बेकुसूर बच्चे के लिए, जो पिछले तीन महीने से उसके गर्भ में पनप रहा है, जिन्दा है। और महज इसी आशा में कि भगवान एक दिन आपको सद्बुद्धि देगा, उसकी अटूट पतिभक्ति के लिए आपके विकृत मस्तिष्क में कुछ सद्भावना जगाएगा। गुरुदेव के पत्र में सुरेखा ने एक बार मुझे पूछा था आदमी की भावनाओं की सीमा आखिर कहा तक है ? क्या उससे भी आगे है कहीं जहा एक पशु दूसरे पशु के संतोष के लिए अपना तन मन और सभी कुछ अर्पित कर देता है ? सुरेश बाबू ! गुरुदेव को मैं भी उतनी ही श्रद्धा से अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार हूँ सिर्फ इसलिए कि उनका मन बर्फ की तरह साफ और चमत्कार है। प्रेम यदि मानव मन की भाषा है तो श्रद्धा क्या उसका अधिकार नही है ?

जीजाजी ! सुरेखा के एकदम से यों चले जाने का आश्चय जरूर होगा, लेकिन अब उसके दुबल शरीर म बसने वाल दृढ मन ने भी यह प्रतिज्ञा कर ली है कि वह स्वय आपके यहा आकर अकारण आपकी मार नही सकेगी। सच्च मन का आत्म बल शायद आपने अभी तक देखा नही है, अब देखिएगा।

आपको अप्रिय लग सकने वाले इस प्रलाप के लिए क्षमा माग कर मैं परमेश्वर स आपको सद्बुद्धि देने की प्राथना करती हू।

आवश्यक समझे तो यहा दम तोडती अपनी आग भी पवित्र धम पत्नी को आकर ल जाए।

अपने हृदय की समस्त शुभकामनाओ के साथ

आपकी,

ऊषा

गुरुदेव का पत्र सुरेश के नाम

३-७-६१

सुरेश बाबू

आपका कृपा पत्र मिला। सुरेखा जैसी आदश पत्नी के सबध म आपके पूर्वाग्रही मन की कुछ शिकायतें मैंने आपके पत्र मे देखीं। मुझे कष्ट हुआ यह जान कर कि उसकी निर्दोष श्रद्धाए ही आपके असतोष और अव्यवस्थित पारिवारिक जीवन का एक मात्र कारण हैं। आपकी दृष्टि म यदि सारा दोष मरे ही कारण है तो मैं आपके सामान्य जीवन के सुख के लिए किसी भी सुरेखा को अपनी एक छाया

तक स भी इ कार कर सकता हू। वसे आपन मुझे इतना रोष भरा पत्र लिख कर और सुरेखा क अनुकरणीय चरित्र पर छीन्टाकशी कर निरथक ही अपनी शक्ति और श्रम का अपव्यय किया है। सुरेश बाबू! सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए पूर्वाग्रहों और व्यर्थ क मतयो को छोडना पडता है उनक लिए पति पत्नी म एक दूसरे के प्रति आस्थाओ और विश्वास का आवश्यकता होती है।

सुरेखा स कहियेगा यदि वह मुझे श्रद्धा की दृष्टि स दखती है तो वह आज ही स कम स कम मर ही लिए अपनी पेंटिंग की हाबी को छोड द। और यदि आप अधिक उदार न सकत हैं और एक अच्छी पत्नी की चाह क साथ साथ उसका मानसिक विकास भी आवश्यक समझते हैं तब फिर आपको प्रयत्न करके एक अच्छा पति बनना पडेगा।

आवश्यकता समझे तो याद करियेगा।

आपका ही,

रवि बनर्जी

सुरेश का पत्र ऊषा के नाम

१० ७ ६१

ऊषा

तुम्हारे और गुरुदेव रवि बाबू के दो पत्र मिले। सुरेखा को लेने मैं कल ही तुम्हारे कानपुर पहुँच रहा हू। सुरेखा क सम्बन्ध में तुम्हे जो कष्ट हुआ उसक लिए, उसकी और अपनी तरफ स क्षमा मांगता हूँ। उसे मना कर रखना।

सुरेश

चार

जैसे एक कविता और एक उपन्यास सरला और मैं—यूनीवर्सिटी की साउथ विंग के एक कोरिडोर मे एक किनारे पर बैठ थे। सरला—सुन्दर कलात्मक आवरण एक भ्रम सा कुछ, जो दिमाग को बगैर परेशान किए आसानी से समझ मे नही आता। कितना सुन्दर नमूना था एस्थटिक्स का। कभी भी किसी भी क्षण हर किसी से कहला देता—बहुत सुन्दर। और वही बहुत सुन्दर मेरे सामने कविता सी लिपटी लिपटायी, अपने आप मे उलझी सरला बोर बैठी थी। मेरा मूड ठीक नही था।

सरला! डिड यू सी मेडन एण्ड द फिलास्फर?'—मैंने पूछा। 'बोर करे बिना क्या तुमसे नही रहा जाता? अमित! मैं मानती हूं बस कि लड़किया इन्टलीजेन्ट नही होतीं। मैं एक कविता हू—और तुम एक नॉवल अनुभूतियों का रोचक अध्याय। पूरे जीवन की एक खुली किताब। जैसा कि तुम कहते हो। बट आई डू नाट अण्डरस्टैण्ड व्हाई वाण्ट यू बिहेव?

डा० सिंह की छोटे छोटे कदमों वाली प्रोफेसराना चाल मुझे कभी नहीं भाई। शायद वही थे। पास से निकलते हुए बोले— हलो अमित। हाउ डू यू डू ?

मैं एस चौंका, जैसे एकदम खून में पकडे गए हो हम ! मैं जवाब दे पाता उससे पहले ही वह आगे निकल गए थे।

सरला के पास लौटा तो वह प्रश्नसूचक दृष्टि से मुझे ऐसे देख रही थी जैसे उसका शून्य में छोड़ा गया प्रश्न अब भी लौट कर आएगा और मुझे परेशान करेगा। मैं उसके प्रश्न को भूल कर अपने सामने बैठी सरला को देख रहा था बल्कि उसे एकटक देख कर जैसे आज याद करने की कोशिश करने लग रहा था। सरला—भूली भूली सी दो आँखें। शायद वही दो आंखें थी जैसे सरला हो। दुनिया भर को भूलती हुई आंख ही मेरे लिए इस दुनिया में जैसे याद करने भर को रह गई थी। मैंने अब तक किसे इतना देखा था—जितना सरला को, उसकी आखों को देखा था। भूल सकता है भला कौन तुम्हारी आंखे।—लुध्यानवी की गजल ! उनके बाद तो और क्या था ! बस सावला सा रंग, सादगी की एक जीती जागती तस्वीर। न क्रीम न स्नो न रूज लिपिस्टिक न और कुछ। बालों में तेल भी एक बहुत सीमित मात्रा में सभाल कर कर लगाया हुआ।

सुडौल साचे में ढले शरीर पर अत्यधिक सोबर रंग की एक साड़ी और उसी से मैच करता ब्लाउज।

आंखों के बाद उसकी सादगी और चुप्पी ने मुझे परेशान कर रखा था। क्या एक लड़की सबके साथ में को एजूकेशन में पढ़ते हुए भी उतनी चुप रह। चुप रह कर पढ़ना-लिखना होता है तो प्राइवेटली एम ए क्यों न। कर लिया जाता है ? इतना रिजर्व रहने में

क्या अर्थ हो सकता है ? रिजर्वनेस उसकी विवशता है, अथवा उसका चारित्रिक गुण—यह रहस्य मुझे कभी समझ में नहीं आया।

शायद यही विचार अक्सर मेरा मूड खराब कर देता था। इतना अधिक अपने अन्दर रहने की, और साथ ही मेरे जैसा एक अत्यधिक एक्स्टोवर्ट फ्रेंड चाहने वाली—इन दोनों बातों का कहां मेल बैठता था मुझे कभी समझ में नहीं आया। मैं एक शताश में भी उसके और मेरे काफी दिनों से चलते आ रहे परिचय से संतुष्ट नहीं था। कुंठाओं को अपने अन्दर जगह देते रहने से तो अच्छा था ऐसे सम्बन्ध को एकदम से तोड़ दिया जाता। मगर कमजोरियां आदमी से इतनी जल्दी अलग कहां होती हैं ? सरला से मैंने बहुत बार कह दिया था कि वह मुझसे मिलना छोड़ दे। मगर कुछ दिनों के बाद मेरा मन मुझे फिर उसकी तरफ खींच ले जाता और मैं कभी किसी ठंडी सुहावनी सुबह में यूनीवर्सिटी के पुस्तकालय में किसी पुस्तक में उलझी सरला से जाकर कह देता—'गुड मार्निंग ! हाउ डू यू डू, सरला !

या फिर वही स्वयं काफी दिनों की चुप्पी के बाद जब सहन-शक्ति का बांध टूट सा जाता, चुपचाप लाइब्रेरी के एक कोने में बुला कर मुझे कागज का एक मोटा सा पुलिंदा पकड़ा कर ऐसे चली जाती, जैसे हम दोनों एक दूसरे के लिए बिल्कुल अजनबी हों और उस पुलिंदे का आदान प्रदान किसी अत्यधिक जरूरी कारणवश ही किया गया हो।

मैं सोचने लगता कौन सा रूप है मानव सम्बन्धों का यह जो न परिचय की सज्ञा में आता है और न ही मैत्री की सज्ञा में। कितना अनकन्वेंशनल है फिर भी कितना यथार्थपूर्ण है—कम से कम भारतीय कोएजूकेशन के संदर्भ में। विचारों से कितनी प्रगतिशील है आधुनिक भारत की विश्वविद्यालय में पढ़ने वाली यह नारी ! लेकिन,

सम्मुख मे किस पहूदे, दकियानूमी ढग स अभिव्यक्त होकर आती है। मानव सम्बन्धो का आखिर कौन-सा रूप है यह!

मैं नाहक ही चिडचिडा हो उठता हूँ। मगर नाहक ही क्यो? जो सम्मुख है, वह इतना दुरूह ही क्यो बना रह? यह चुप्पी यह रिजर्वडनेस और मत्री चाहत हुए भी साथ ही जान बूझ कर रखी गई इतनी दूरी। जब मैं उसे काट खाऊगा। जब मैं आदमियो मे से न होकर कुछ और ही हूँ।

मेरी भुभलाहट मुझे दिन भर परेशान किए रखती है। सरला के चहरे मे भी एक विवशता है जसे वह चाहती बहुत है मगर उसे उस 'बहुत मे स उपल ध बहुत कम है। मैंन उसे बहुत बार समझा दिया है—' तुम्हारे और मेरे परिचय और मत्री के बारे मे लोग स्क डल खडे करते हैं। तुम डरती हो और डर कर फिर मुझम कइ दिनो क लिए अजनबी हो जाती हो। *क्या यह सब तुम्हारा एस्केपिज्म नही है—एक पलायनवादी प्रवृत्ति जो महज आदमी के आत्म विश्वास की कमी को और बढाती ही है कम न ीं करती!* और यह एस्केपिज्म भी ऐसे नाहक मे खडे किए स्क डल का हल थोड ही है। जब हम अजनबी रह कर एक दूसर म आख बचा बचा कर य ा निकलत रहगे स्क ड ल्स तो तब भी रहगे। क्यो न बोल्ड होकर स्वाभाविक रूप मे रहना सीख लती हो।

मगर सरला क्या कर? वह भी तो और लडकियो की ही तरह एक हि दुस्तानी लडकी ही है।

सरला की इस विवशता स जो यहा उसके विश्वविद्यालय क जीवन म उसका चारित्रिक गुण सा बन गया है मुझे खीज होती है और मैं फिर आज तीसरी बार 'मयूर म लगे दायरा म घुस जाता

हू। आखिरी दिन का दायरा' का यह सेकंड शो।

कितना मार्मिक कहानी है। रूढिवादी समाज द्वारा खीचे गए दायरे से कहानी की नायिका और नायक, लाख ताबड तोड कोशिश करते रहने पर भी बाहर नही निकल पाते—ये दायरे कितने सत्य हैं! कितने कष्टदायी हैं! तब भी आदमी को कितने प्रिय हैं, प्रिय हैं तभी तो आदमी इनको छोड कर, इनको तोड कर इनसे बाहर नही निकल जाता है।

मेरा सिर और भारी होने लगता है और मैं बाहर निकल आने की सोचता हू तभी किसी परिचित से स्वर को सुनकर चौंक पडता हू जो शायद मेरे ठीक पीछे से आता है।

लगभग ८-१० सीटों की दूरी पर मैं देखता हू, सरला कितनी वफिक्र होकर इस अधेरे मे सिसकिया भर रही है जहा जोर से बोलना तक भी एकदम मना है। शायद उसका भावक मन कहानी की नायिका से अपना तादाम्य स्थापित कर बठा है। उसके साथ का नायक उस 'पागल 'बेवकूफ और 'बच्ची' जाने क्या क्या कह कर चुप करने की कोशिश मे है ताकि उसके अन्य साथ के दर्शकों की ओर से आरहे विरोध की मात्रा म कुछ कमी हो सके।

मुझे यह सब सह्य नही है। मैं झपटकर बाहर निकल आता हू। मेरा सिर फट रहा है। मैं दिसम्बर की ठण्डी रात को एम आई रोड पर स्टेचू सर्किल की तरफ से घूमते हुए निकल पडने के इरादे से चल पडता हू।

मुझे याद आती है—एक निमत्रण की। राज्य के मन्त्री महोदय के यहाँ डिनर पर। घडी मे ८ बजे हैं। मैं स्टेशन रोड की तरफ घूम लेता हू और रिक्शे के लिए हाथ खडा करता हूँ। मेरे

सामने रिक्शे की जगह एक कार आकर रुक जाती है और जे ६६४६।

सरला के नायक की कार ! सरला के साथ वह भी दायरे के नायक की तरह है।

'किधर जाओगे अमित ! आ जाओ मैं छोड़ दू !'

भागीरथ का ऊपरी दिखावटी प्रेम मुझ पर एक बिन मांगे उत्तरदायित्व के रूप में सवार होकर आता है।

'थक्यू ! भागीरथ ! थक्यू ! आई वुड प्रिफर गोइंग आन फूट !'

'अनमनरली । भागीरथ के स्वर की घृणात्मक अभिव्यक्ति के साथ ही कार स्पीड पकड़ लेती है।

डिनर पार्टी—एक टिपीकल डिनर पार्टी की ही तरह, एक मिनिस्टराना डिनर पार्टी। जो साढे आठ बजे शुरू होकर ११ बजे से पहले कभी नहीं छूटती। मंत्री महोदय का पी ए सभी अतिथियों का शुक्रिया अदा करते करते जैसे थक गया हो। मेरा मित्र होकर भी मुझ पर वो तवोज्जह नहीं रख सकता है वह जो यहां से बाहर रह कर उसके लिए सम्भव है।

'य र अमित ! बहुत लेट हो गये गो न ! आई एम वरी सोरी। स्पेअर होती तो मिनिस्टर साहब की कार में भी ले चलता मगर अब तो शायद कोई बहुत पुरानी मिलने वाली आई हैं सो रात को उन्हें छोड़ने जायगी।

नेवर माइण्ड ! —कह कर मैं स्वयं दुमंजिले मकान के बड़े हाल में सीढ़ियों की तरफ चला आता हूं। सीढ़ियों के बाईं ओर मिनि

स्टर साहब का बड रूम है। अहा शायन आज रात को उनकी मिलन वाली

मैं मिनिस्टर साहब को व्यक्तिगत रूप म भली भाति छ सालों से जानता हूँ। य मिनिस्टर लोग

तभी मिनिस्टर साहब के ब रूम म एक उन्मुक्त हास्य का स्वर वातावरण को चीरता हुआ निकलता है।

कितना परिचित स्वर है यह ! क्या सरला है ?

मिनिस्टर साहब का पी ए मरे पीछे पीछे चला आता है।

रमन ! कौन है यह मिनिस्टर साहब की मिलने वाली ?'

अमित ! तुम शायद नहीं जानते उस। यूनीवर्सिटी मे एम ए म पढ रही है।

रमश को शायद मरे घर के बहुत दूर होने की चिन्ता है।

अमित ! तुम मरी साइकिल ले जाओ। मैं सोचता हू— सरला सान्याल ! एक तरफ इतनी रिजर्व नज़की कैसे दूसरी तरफ इतनी स्पुर कर हम सकती है ? मिनिस्टर जस भयकर दानव क पास रहने वाली लडकी एक चरित्रवान अमित स क्यो इतनी दूरी रख कर बा करती है ?

रिजर्वनस उसकी विवशता है अथवा उसका चारित्रिक गुण ?

बिना बाप की इतनी गरीब सरला कस इतन अच्छे अच्छे कपडे पहनती है ?

सरला क चरित्र के सम्बन्ध में यूनीवर्सिटी क मरे मित्रों द्वारा गढ़ किय गए रोज़ के नए २ स्कन्डल्स मे उसके चरित्र पर दोषारोपण

से अधिक, मुझमे उनकी सहानुभूति का जो भाव है उसका आभास मुझे होता है।

वेचारा अमित!—

वेवकूफ अमित!

ब्वाइस ए वन है मगर ये काल गन म बल डरगा

इन प्रास्टी

अब शायद मेरा मूड ठीक रहेगा। मुझे पता ही नही चलता बस मैं इतनी जल्दी घर पहुंच जाता हू! ●●●

पाँच

दसवीं का चाँद पूरब में काफी ऊंचा उठ आया है। उसकी रोशनी की किरणें बड़ी देर से मेरा ध्यान खींच रही हैं। और मेरा मन चाँद जैसी ही दूर किसी और जगह है। पता नहीं क्यों मेरे की किसी भी चीज में मेरा मन नहीं है। साथ वाले कमरे में अपने दोस्तों के साथ बैठा भास्कर अपनी बर्थ डे पार्टी की चाय पी रहा है और संगीत की धुनें बार बार आ आ कर मेरे दिमाग पर चोटें सी कर रही हैं। भास्कर के दोस्तों ने जितनी बार भी आकर मुझे तन्हाई से खींच ले जाने की कोशिश की है मेरी झुंझलाहट और और बढ़ती गई है। तन्हाई के सुख पर इतनी वर्जनाएं क्यों हैं। आदमी की सामाजिकता ही तो मूलतः मानव मन की सारी कुण्ठाओं का कारण है फिर उन कुण्ठाओं से ऊब कर आदमी यदि कुछ समय के लिए अपने अंदर अकेला जाकर रहना चाहे तो क्यों लोग उसे नहीं रहने देते?

मुझे खीझ होती है और मैं कमरे की सारी खिड़कियां बंद करके दरवाजा लगा देता हूँ। दरवाजे के दाहिने हाथ की तरफ मंटिल

पीस पर रेडियो के पास पड़ी वीनस की स्मृति मुझे कचोटती है। सोचता हूँ—क्यों ही लिना ने मुझे यह संगमरमर की वीनस–गाडेस आव लव एण्ड ब्यूटी। लिना की वीनस के साथ मेरे और उसके पारस्परिक सम्बन्धों के ढेर सारे सदर्भ जुड़ हैं। कालिज के लिए वह और मैं साथ साथ आते हैं। क्लास में साथ बैठते हैं, पुस्तकालय में एक साथ बैठकर पढ़ते हैं। शहर के रेस्त्राओं में देर देर तक बैठ कर चाय काफी आइस्क्रीम खाते हैं, लंच डिनर लेते हैं। सर्दियों की धूप में और गर्मियों की ठण्डी शामों में साइकिलों पर शहर के बाहर लम्बी लम्बी दूरियों तक घूमने जाते हैं। साल में दो दो बार अपनी वर्षगांठें मनाते हैं भेंटें लेते और देते हैं। हेमन्त और लता के दर्दीले गाना को सुन सुन कर साथ साथ रोते हैं। कविताओं के ममस्पर्शी स्थलों को अण्डर लाइन करके एक दूसरे को देते हैं। सुबह उठने से लेकर रातों को सोने तक साथ रहते हैं। यही सब है जो अब रत्ना के सहवास की स्थिति में मुझे सहन नहीं होता। मेरे बेड रूम में लिना की यह वीनस मुझे रोज तंग करती है मगर तब भी मैं इसे फेंक नहीं देता। मैं ऐसे रूप के दास हैं हम सभी। लिना ने जब मुझसे कहा था—तुम्हारे मुनहरे रेडियो सेट के आबनूस वाले काले फ्रेम पर सफेद संगमरमर की यह वीनस खूब जचेगी, अविनाश! रख लो! तो चाह कर मैं उसे रोक नहीं पाया था। यह जानते हुए भी कि रत्ना इसे स्वीकार अपने आवे में नहीं रहेगी और बहुत सम्भव है अपने बेड रूम में इस रचना कतई पसन्द न करे—मैंने लिना की आग्रह और अधिकार से लिपटी इस भेंट को चुपचाप स्वीकार कर लिया था।

संगीत की धुनें अब भी मेरे कानों में आ रही हैं। भास्कर का बलराममट बनर्जी वायलिन पर कुछ बहुत ही दर्दीली धुनें निकाल रहा है और मैं वीनस को पकड़ आत्म विभोर हुआ सा खड़ा हूँ, सुन रहा

हू दद के व स्वर मेरा हमदम मिल गया नजर बन गई है दिल्ली की जुबा न तुम हमे जानो न हम तुम्हें जानें !—कितना दद है बनर्जी के स्वरो म उसकी वायलिन के तारो म ! मुझे निशा की स्मृति फिर हो उठती है। मरे दद को कितना पहचानती है वह। लेकि रत्ना ?

तभी रत्ना की चप्पल की आहट मुझे होती है और वह मेरे कमरे म तजी स घुस आकर ढेर सारी चीजो के बडल सोफे पर फेंक कर खुद पलग पर एकदम स बिखर सी जाती है—'डार्लिंग ! देखो न, तुम्हारे लिए क्या क्या चीजें लाइ हू मैं। तुम्ह तो बस हमारी कुछ भी फिक्र नहीं है। आयन्दा से हम अकल शापिंग को नही जायेंगे। समझे !' और अपनी खाली खाली आखा म मुझे ऐसे देखने लग जाती है जैसे मुझे नहीं मेंटिल पीस पर रक्खी वीनस को वह हमेशा देखा करती है। वाकई, मरे सुखो का रत्ना कितना ध्यान रखती है। मैं पलग पर स उसे समेट कर अपनी बाहों म भर लेता हूं और एक दो तीन चार पता नहीं कितनी बार उसे ! निशा की तरह रत्ना भी ऐसी स्थिति को निर्विरोध स्वीकार कर लेती है। बस निढाल होकर मरे प्यार को पीती रहती है, जैसे इसके अतिरिक्त उसे और कुछ भी नही चाहिए।

मगर तब भी मेर पतित्व के प्रति रत्ना को एक गहरा असतोष है—कि क्यो उसका अविनाश रातो मे उसके साथ ठीक से नही सोता बल्ब की रोशनी म घटों छत की तरफ एकटक ताका करता है न कुछ ! कि क्यों वह सुबह उससे पहले ही उठ जाता है, कि क्यों वह उसे अपने पास बिठा कर उससे ढेर सारी उल्टी सीधी बातें नहीं करता कि क्यों शाम के वक्त जल्दी घर लौट कर वह उसे भिर्जा इस्माइल रोड की मरकरी और निओन रोशनियों स सजी दुकानों

वाले बाजार के अत्यधिक शानदार रेस्त्राओं में ले जाकर चाय नहीं पिलाता ? अविनाश में उसे सिर्फ एक पति ही तो नहीं चाहिए, कुछ और भी तो होना चाहिए। बात बात पर रूठने वाला, उससे झगड़ा करने और झगड़ा करके उसको मान मनोबल करने वाला एक प्रेमी भी अविनाश क्यों नहीं बन पाता है ? और रत्ना मुझे अपने साथ कस कर बांध लेती है। जब मेरा दम घुटने सा लगता है तो मैं कह देता हूँ— बस करो छोटी बहू ! बस करो।

छोटी बहू का यह सम्बोधन भी मैंने ही रत्ना को दिया है। शायद इस सम्बोधन के मर्म में कुछ सन्दर्भ हो। हां मुझे इतना अवश्य याद है, रत्ना से शादी करने से पहले ऐसा ही एक सम्बोधन बड़ी बेगम मैंने निशा को भी दिया था। घर में सब लोग रत्ना को इसी सम्बोधन से जानते हैं, यहां तक कि भाई साहब का सबसे छोटा लड़का राजीव भी अपनी आंटी को इसी नाम से पुकारता है।

मैं अपने होंठों को रत्ना के होंठों से छुआता हूँ। रूमाल निकाल कर पोंछता हूं और तब पूछता हूं— तुम आज फिर प्याज खा कर आई हो छोटी बहू ! तो छोटी बहू एक बड़ी अजीब सी बात कहती है— शायद मैंने ही कभी कही हो उसे—'बिन बहू स्मेल्स द किस इज नोट लव। मैं चौंकता हूं— यह जुमला कितना जाना पहचाना है मेरा ! मुझे स्मरण आता है अपनी ही एक कहानी का जिसमें नायक नायिका से ऐसी ही एक स्थिति में यह बात कहता है। रत्ना मेरे चेहरे पर विस्मय के भाव देख कर, जोर से हंसती है तब कुछ ठहर-कर धीरे से कहती है— हमें छोटी बहू मत कहा करो डार्लिंग ! अच्छा नहीं लगता।

मुझे लगता है जैसे रत्ना इस सम्बोधन का विरोध नहीं

निगाह से देखती है। तभी तो शायद मेरा कुंठित मन 'बड़ी बेगम' के से नए नए संदर्भों की रचना करता है।

लेकिन इन सब बातों को गहराई से सोचने पर लगता है—आदमी की अपेक्षाएं कितनी असीमित हैं कितनी अनन्त हैं, और साथ ही कितनी अधिक आत्मिक (Subjective) भी हैं। अपने मन के पूर्वाग्रहों से वह कभी भी मुक्त नहीं हो पाता है। और यही सच है, तभी तो शायद उसके पारस्परिक सम्बन्धों में रोज नए नए संदर्भ बनते हैं मिटते हैं और फिर बनते हैं फिर मिटते हैं। उनको सही गलत जैसे जी चाहे तोड़ा और जोड़ा जाता है।

मुझे जहां एक तरफ छोटी बहू के असंतोष का विचार आता है, वहीं दूसरी तरफ अपने उन संदर्भों का भी स्मरण होता है जिनके मूल में मानव सम्बन्धों का एक चिर शाश्वत, चिर जीवित, त्रिकोण है—रत्ना अविनाश और निशा। निशा रत्ना और अविनाश! अविनाश निशा और रत्ना! एक ऐसा त्रिकोण है यह जो जीवन के किसी भी प्रमेय (Theorem) को उसकी क्यू ई डी (Q E D) की स्थिति तक नहीं पहुँचाता। जिसमें ब अ के बराबर है, अ स के बराबर है। लेकिन तब भी ब और स कभी भी बराबर नहीं बनते। मानव सम्बन्धों के त्रिकोण की ये असंगतियां जीवन का कितना बड़ा यथार्थ हैं। जहां रत्ना की पत्नी का मन अपने पति अविनाश से एक अपरिभाषित प्रेमी की भी अपेक्षा करता है, वहां निशा की प्रेमिका एक नैतिक (Moralist) अविनाश से एक पति की भी मांग करती है। अविनाश अकेला क्या क्या करे?

मैं सारी स्थिति को ठीक से जान कर भी अपने मन को संतुष्ट नहीं कर पाता। मुझे लगता है, मैं पागल हो जाऊंगा। मेरा सिर फटने लगता है। मैं अपने आप में नहीं रहता। रत्ना चाय का

प्याला लाकर मुझे देती है। मैं झुझलाहट मे उसे गिरा देता हूँ। मेंटिल पीस पर रक्खी वीनस को जोर मे फर्श पर पटक कर टुकडे २ कर देता हू और ट्रक मे से अपने एलबम से दो चार पुरानी फोटुए निकाल कर उनको फाड देता हू। रत्ना जोर से चिल्लाती है, चीखती है। घर के सारे लोग मेरे चारो तरफ इकट्ठे हो जाते हैं। पिताजी भास्कर से कहते हैं – कल हास्पिटल चल कर अविनाश को दिखाना पडेगा। और तब मैं चुपचाप बड रूम से निकल कर अपने ड्राइंग रूम मे चला आता हू जहा के रेडियो सेट के ऊपर कोई वीनश नही है। जहा की सारी चीजें सम्पूर्ण रूप से रत्ना की हैं रत्ना के टेस्ट की हैं। उसी ने उन्हे खरीदा है। उसी ने उन्हे सजाया है। ●●●

लिए जो छोटी सी बात है वही यदि उसके पापा के सिर पर एक काला पहाड़ हो तो कोई क्या जाने ? मार्था ऐसी छोटी छोटी बातों पर ही झुंझलाकर अपने पापा से पूछ लेती है— कब तक चलती रहेगी यह प्रदर्शनी ? मैं तो आप लोगों की इस प्रदर्शनी में कोई म्यूजियम पीस बन कर ही रह गई हूँ । इससे तो अच्छा है कि प्रोटेस्टेंटों के अपने समुदाय में मेरी फोटो की सौ पचास कापियां करवा कर आप बस हो बैठें ।" और ऐसा कहकर स्वत ही मार्था के होंठों की कोरें दोनों कानों की तरफ कुछ खिंच सी जाती हैं । वह पापा को सीधी खुली आंखों से देखने लग जाती है । पापा मार्था को ऐसे देखने लग जाते हैं जैसे मार्था एक फोटो हो । मगर जो बोलती हो वह फोटो कैसे हो सकता है ? पापा कहते हैं— बेटी मार्था ! फोटो से तो कोई शादी करता नहीं है न ।'

शादी करने वाली मार्था एक है और उससे शादी करना चाहने वाले एक सौ एक या उससे भी कहीं ज्यादा । जब मार्था को कोई सहज समाधान नहीं मिलता तो उसे फिर झुंझलाहट होती है । वह पापा से मन ही मन पूछती है— क्या जरूरत है शादी करने की जब चौबीसों घण्टे उसकी खैर-खबर करने वाले उसके बीसियों मित्र हैं । शहर के कैबरे हैं थियेटर हैं और इन सब के लिए एक स्वतंत्र स्वच्छन्द मना मार्था है । मगर अपने मन में सोची जाने वाली बात को पूर्वांग कहकर ही मार्था रह जाती है । असल बात पापा से कहने की उसे हिम्मत नहीं होती है । वह जानती है उसकी ऐसी किसी बात का पापा की तरफ से आने वाला जवाब— उन्हें अपनी मार्था बेटी के लिए उसकी खैर खबर करने वाले साथियों नहीं एक पक्का मित्र चाहिए जो उसका अपना हो । मार्था के बीसियों मित्र कभी भी मार्था को ऐसा नहीं रहने देना चाहेंगे जैसी वह आज है ।

और पापा फिर माथा से एलक्जेण्डर मोलोमन की बात कहने लग जाते हैं। मगर उसे कहां फुरसत है उस सबको सुनने और समझने की, जो हुआ नहीं है, अब होने जा रहा है या हो सकता है। वह अन्दर जाती है और अपनी प्यारी बहिन मनो को मिल्क चाकलेट का एक सफेद शीशे सा चपटा पकिट दिखाकर अपनी रोजमर्रा वाली सांकेतिक भाषा में पूछती है आया वह हैड पोस्टमास्टर साहब से मार्था की कोई अपनी चिट्ठी लेकर आई है?

मनो आज भी चिट्ठी देने से पहले चाकलेट ले लेती है और तब एक हल्के नीले रंग का मोटा सा लिफाफा माथा को पकड़ा कर बाहर की तरफ भाग जाती है जहां बरामदे में उसके पापा के पास बैठा मेटपाल चर्च का हैड प्रीस्ट फादर विसेंट उनके पापा से आज की राजनीति पर चर्चा कर रहा होता है। सारे देश में व्याप्त भ्रष्टाचार अव्यवस्था और महंगाई का सवमुलभ और एकमात्र हल वह क्रांति में ढूंढता है। मार्था के पापा सोचते हैं—फादर विसेंट इतना युवा है तभी तो क्रांति की बात सोचता है तभी तो उस आज की नई पीढ़ी की सुस्ती और निष्क्रियता वाली आदतों पर आक्रोश होता है और मार्था के पापा खूब जानते हैं फादर विसेंट के दिल की एक बहुत गहरी बात जो उसके समुदाय के एक दो आदमियों को छोड़कर और किसी को मालूम नहीं है कि हर हफ्ते रविवार को होने वाली प्रेयर के समाप्त हो जाने के साथ ही वह हमेशा ही बाद में कुछ नवयुवकों और नवयुवतियों को ठहर जाने के लिए कह देता है जिनमें उनकी अपनी मार्था भी होती है। विसेंट के विषय में मार्था ने अपने पापा को और भी कई बातें बताई होती हैं कि फादर विसेंट में देशभक्ति कैसी कूट कूटकर भरी है, कि वह एक कट्टर मानवतावादी है जो प्रेयर के बाद वाली मीटिंगों में रोज ही अण्डरग्राउण्ड क्रांति की बातें किया करता है।

वही अन्दर बठा बठा बम बनाया करता है और अपने सभी सहयोगियो को ठीक निशाना साधने की ट्रेनिंग भी दिया करता है। सरकारी अफसरो और नेताओ को खुले आम गालियां देता हुआ विसेंट कहता है— सबने मिलकर बचारे महात्मा को खा डाला। नेहरू को भी चाट गए। राक्षस कहीं के। नंगे भूख भडिय। विसेंट कभी कभी तो बस एकदम ही बिलख उठता है अपनी बात कहते कहते।

पापा समझते है मार्था की भावुकता को। छोटी छोटी बात भी उसे कितनी जल्दी असर कर जाती है। उन्होन तो यह सब जानते बूझते हुए भी अतिरिक्त रुचि लेकर कभी भी फादर विसेंट को समझाने की चेष्टा नहीं की है। उनके लिए तो विसेंट भी वसा ही एक साधारण सामान्य व्यक्ति है जसे आज की दुनिया म सकडो हजारों होते हैं। और इस उम्र म तो आदमी अपने से बाहर कुछ अधिक ही रहता है। फादर विसेंट चच का पादरी है तो क्या हुआ है तो ऐसी उम्र का। और उसके उनके यहा आने जाने उठने बठने और बोलने म भी भला मार्था के पापा को क्या एतराज हो सकता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष ऐमी भी कोई बात काफी दिनो से जमी बठी है कि मार्था को फादर विसेंट से मिलना ही चाहिए उसमे मेल मुलाकात बढानी ही चाहिए – शायद यो ही मार्था की समस्या का कोई हल मिल जाए। यही कारण है तभी तो शायद मार्था के पिता हर शाम को विसेंट को चाय पिलाते हैं वतमान राजनीति के मसलों पर उसकी सम्मति स सहमति प्रगट करते हैं। वसे पता नहीं मार्था भी फादर विसेंट मे उसी दृष्टिकोण से रुचि लेती हैं अथवा नहीं ?

मार्था को अपनी बातो ही स कहां फुरसत है ? उसकी पत्री ही उसका पूरा दिन भर यो ही खा डालती है। और शाम का अपने इधर उधर के सारे कामो स निपट कर थकी थकाई मार्था जब घर लौटती है

तो उस दखकर एक बार तो उसके पापा भी थक जाते हैं उ हें लगने लगता है जैसे व अब बूढे हो गए हैं, उनके हाथ परों में दद रहता है, और उन्हें भी हर सुबह दोपहर, शाम और रात का चार चार घण्टो के बाद किसी अच्छे टॉनिक की तरह अपनी बेटी के हाथ की बनी गम चाय की तलब रहती ही है। और अपनी एसी स्थिति म व चाहकर भी अपनी प्यारी बेटी को कुछ हल्की भारी बात कह सुन नहीं सकते। उम यह भी नही बता सकते कि धीरे धीरे उसके चेहरे की चमक धु धली पडती जा रही है कि हर सुबह सूरज की पहली किरण के साथ ही जब वे उठते हैं तो मार्या को दखकर उ ह लगता है जसे बीते हुए कल की अपेक्षा आज उनके सिर का भार थाडा और बढ गया है कि हर शाम दिन ब दिन उनकी माया अधिकाधिक गम्भीर और प्रौढ होती जा रही है। और तब व फिर एक गहरी त हाई मे डूब जात है। और तब फिर रोज की तरह ही माया भी उ ह बिना कुछ कहे सुने ही अपने साडी के पाल और सीने के उभार की तरफ देखते हुए अपना पोटफोलियो सभालती हुई चली जाती है, जिसमे हमेशा ही उसके कुछ व्यक्तिगत पत्र होत हैं, रातो म लिखे गए उन पत्रों के जवाब होते हैं एक छोटी खूबसूरत सी डायरी होती है जिसम कुछ लोगो की जन्म की तारीखें होती है पीछे की तारीखा पर लिख लोगों स लिए उनके अप्वाइमेंटस होत हैं और होते हैं—साहिर या अमृता के तीखे और तल्ख इन्क्लियाबी शेर, नज्म और गजलें, जिन्ह शादीशुदा या गैर शादीशुदा हर जवान लड़की चाहती है। और इसके अलावा भी उसक उस छोटे स पोटफोलियो म बन्द होती हैं मार्या की गम ठण्डी कुछ सासें जो धाकई म अपना वजूद सिद्ध करती होती हैं। जो उसकी तनहा जिन्दगी की एक सच्ची वसियत होती हैं। काफी दिनों के बाद उसका यह पोटफोलियो जब उसकी गर्म ठण्डी सांसा से ऊपर तक भर जाता है तो

उससे एक चेहरा बनता है जो हमेशा ही किसी एक हेमन्त का होता है जो बचपन में उसके साथ खेला है किशोरावस्था में उसके साथ पढ़ा है यौवन में उसके साथ वन प्रान्तर देश विदेश घूमा फिरा होता है और आज जब उसे उसकी बहुत ज्यादा जरूरत है उससे दूर हो गया है—एक चकवा। अब तो उसकी जिन्दगी की भोर हो गई है अब तो उसे अपनी चकवी के पास लौट ही आना चाहिए। मगर आज मार्था जहाँ है उस दिशा में तो हेमन्त के कान भी नहीं हैं। वह कैसे सुने अपनी चकवी के मन की पुकार? मार्था की रिसेप्शनिस्ट अपनी पक्ती के काउण्टर पर बैठी दिनभर में पता नहीं कितने भीड़ सारे आदमियों के चेहरे और पीठें देखती है। उसकी कुलिया मुस्कराहटें दिन भर में पता नहीं कितने दिलों को बींधती है, छेदती हैं या अन्दर तक टाँच देती हैं, मगर उन बीसियों पचासों या सैकड़ों चेहरों में मार्था को कभी भूल कर भी कोई ऐसा चेहरा नजर नहीं आता जिसका नाम वह हेमन्त रख सके। मार्था को जब हेमन्त याद आता है तो उसके साथ ही नई पुरानी उसकी अनगिनत बातें उसका सलीका उसका व्यक्तित्व और सबसे ज्यादा उसका आत्मविश्वास और जिद्दी स्वभाव भी याद आता है, जिसने हमेशा ही मार्था को अपने अनुकूल काम करने को बाध्य किया होता है।

अपने मन के उस किसी हेमन्त को लेकर भी जब मार्था शहर के बीच में उसके हलचल और भीड़ भड़ाके में पहुँचती है तो उसे सब कुछ भूल जाता है। याद रहता है सिर्फ मार्ग में मिलने वाले परिचितों के अभिवादनों का एक अजीब सी बहुत्वी बेफिक्री से उत्तर देना। ऐसे परिचितों में सफेद बाल वाला एक परिचित भी पार्क हाउस के पास एक बड़ी दुकान के बरामदे में खड़ा रोज ही उसकी प्रतीक्षा किया करता है। अपने मन में जमी उमी ढेर सारी समस्याओं के साथ जिनका

हल मार्था न कभी भी विसे ट के साथ एकात्म होकर नही सोचा है।

आज भी एक पखवाडे के बाद जब मार्था हेमन्त क नैनीताल से लौटकर आई है और अपने काम पर जा रही है तो उस फिर इन्कलाब और आन्दोलनों का वह मसीहा दिखाई देता है जिसके अन्दर एक आग सुलग रही है—बगावत की, देशप्रेम की। मार्था उसके प स पहुँचती है उससे पहल ही विसेन्ट कुछ कहना शुरू कर देता है जो एकदम स मार्था की समझ म नही आता। आज फादर विसेन्ट बहुत बचन है शायद। मार्था कहा चली गई थीं तुम इतन दिना तक?' विसन्ट कहता है मुझे तुम्हारी बहुत जरूरत थी। कितना ढूढा है मैंने तुम्हे?

'फादर विसन्ट' मैं भी किसी को ढूढन ही गई थी हेमन्त के नैनीताल। मुझे पता चल गया है वह इसी माह के अगले हफ्ते ही जमनी स लौटकर आ रहा है उसकी ट्रेनिंग पूरी हो गई है। फादर, आज मैं बहुत खुश हू। स्वदेश लौटकर हेम त मुझम शादी करेगा। उसने अपने मा बाप को भी इस सम्ब ध म एक पत्र लिखा है। मैंने उसका कितना इन्तजार किया है अब तक? और बिना यह सोचे समझे ही कि विसेन्ट का ध्यान उसकी बातो की तरफ कतई नही है मार्था कहे जा रही है पता नही कितनी बातें एक साथ जिनम मार्था के हेम त स हुए परिचय का इतिहास है जिनम हेमन्त की आदतो उसके सलीके और अच्छाइयों बुराइयो का एक विस्तृत ब्यौरा है। मार्था भूल जाती है कि जहा वह जोर जोर स ऊचे स्वरो म फादर विस ट के सामने अपने मन की भड़ास निकाल रही है वह एक आम सडक है। और ऐसी आम सडकें निहायत आम बातो और आम लोगों क लिए ही हुआ करती है। फादर जस गम्भीर रहस्यमयी लोगा और मार्था जसी

हल्की फुलकी औरतो के लिए नही। शायद इसी लिए विस ट माथा
को उसकी बायी बाह स पकड कर पास हा के एक छोटे से तग और
(उन दाना के दृष्टिकाण स) निहायत गदे चायखाने म ले जाता है जो
दोपहर के काम क घण्टा म हमशा खाली रहता है जहा विसेट
नियमित रूप से अपन मित्रो स मिलता है और रोज उन्हें अपनी नई
नई योजनाएँ समझाया करता है। और शायद यही कारण है कि
शहर की बडी २ मिलों मे आए दिन ताल लगते हैं। पिकेटिंग होती है,
और मारपीट क वाक्य सुनन म आते हैं। विस ट माथा को समझाना
बहुत कुछ चाहता है मगर पता नही आज भी क्यो वह रोज की
तरह ही माथा क सामन चुप है। वह उसस इतना ही कहता है कि
उसे भी उन लोगो का सक्रिय सहयोग करना चाहिए जा आज देश की
भुखमरी व भ्रष्टाचार मिटा कर एक ऐस नए समाज की रचना करना
चाहत हैं जो एक सुखी और समृद्ध समाज होगा। बार बार एक ही
बात जो विसे ट माथा को कहता है वह है माथा न अपनी पेर्फ्यूमरी
उत्पादक फक्ट्री क मजदूरो का सगठित करन की। माथा की मुस्कराहट
अगर विस ट क लिए अपनी फक्ट्री क डेढ सौ मजदूरा को सगठित
करक उस मोड नही सकती तो फिर माथा क्या है क्या है और क्यों
है? बहुत ही मजाक के साथ तब विसेट कहता है—'माथा! तुम
मर लिए एक स्त्री नहीं हो मरी एक योजना हो मर सगठन की एक
इकाई हो। सुगर फक्ट्री की रिसेप्शनिस्ट पालू टक्कर को मैंन समझा
दिया है—२७ तारीख को लच टाइम म जब सब मजदूर कारखान म
बाहर होंगे तब कारखान की एक एक ईंट बिखर जाएगी। उसी दिन
कपड की मिल म और कनस्टर क दफ्तर म भी यही सब होगा, जिसक
लिए मिस बेंजामिन और राजाराम शोना का पूरा पूरा सहयोग मुझे
प्राप्त है। तुम जानती हो हमार इस बाहर डिस्टिक्ट के पाकिस्तानी

कलक्टर की काली करतूतें। बस तुम्हारी फक्टी का ही थोडा सा काम बाकी रह गया है। मैं जानता हू कि तुम भी अपनी फक्टी मे बहुत लोकप्रिय हो। पसिनीन फक्ट्री मे सिस्टर मार्था को कौन नहीं जानता ? तुम वहा सब मजदूरो और कमचारियो को ठीक स समझा दो। परसो टोकन स्टाक हाकर तब मन स्टाक और तब प्रगती ८ तारीख को पसिनीन की तुम्हारी फक्टी म भी वही एकदम होना चाहिए । तुम जानती हो कितनी मिलावट है तुम्हारी फक्टी के इजक्शनो मे। जो औषधि प्राणोषधि है उसी म यदि चूने का पानी या उसका चूरा मिला हो तो मृत्युशय्या पर सोया बीमार कसे बच सकेगा ? जहा एक तरफ तुम मुझसे मेरी इस योजना म सहयोग करोगी वही शहर म दूसरी तरफ खाद्यान्नों की दुकानें लूटी जायेंगी। सरकारी दफ्तरो म पत्थर फके जाएगे और यहा वहा आगजनी की भी कुछ वारदातें होंगी। अब समय आ गया है मार्था ! हमे इस सबके लिए अब एकदम तयार रहना चाहिए।

विमल की रोज की नई नई बात सुनकर मार्था गडबडा जाती है। उसे समझ म नहीं पडता, आया विमल कोई कम्युनिस्ट है या फिर सच्चा देशभक्त ? या फिर देशभक्त कम्युनिस्ट का ही एक नया ब्राण्ड। कभी कभी तो जब वह ऐसी ऊटपटांग सी बातें करता है तो उसके एक कट्टर अराजकतावादी होने की बात भी मार्था के दिमाग म आती है। मगर विमल जब बार बार इसी बात पर जोर देता है कि उसके देश का हर इन्सान खुशहाल और स्वतन्त्र होना चाहिए भले ही वह किसी भी कीमत पर क्यों न हो तो फिर मार्था को उसकी बात का सही अर्थ समझ में आने लगता है। प्रेम और व्यक्तिगत सुख भले ही मार्था की दो बडी कमजोरिया हो देशप्रेम निश्चय ही उसके मन की एक सच्ची साध है जिसे वह अपने तन मन और धन हर तरह

पूरी करने की महत्वाकांक्षिणी है।

और जब विसेंट के स्वर में एक प्रवाह आ जाता है तो व पने लगता है कभी इस प्रेम की भाषा मे रोने लगता है, तो कभी वह ऐसा चुप हो जाता है कि माया को उसे हाँ कहने के अलावा और कुछ न ी सूझता। उसकी बात सुनकर माया को भी कभी कभी लगने लगता है जस विसेंट की आत्मा की आवाज को उसे एकाग्र कान लगा कर सुनना चाहिए। और तब सच ही वह एक स्त्री नही रहती विसेंट की एक योजना उसके सगठन की एक इकाई म बदलन लग जाती है। उस अपनी फक्ट्री के वक्त का विचार नहीं रहता। घर बठे अपने पापा और पत्नी को भी कुछ समय के लिए वह भूल जाती है। और भूल जाता है उसे हम के भी जो वर्षों से उसकी आत्मा उसके शरीर के पोर पोर म गहरा बसा हुआ होता है माया जिसकी सास सास से जी रही होती है।

और एसी स्थिति म जब माया एकटक विसेंट को ही देखती रहती है तो लगता है जस वह माया नहीं माया का बुत है—जो सुनता नहीं है महज देखता ही है। विसेंट तब थोडा और आग बढ़कर सुनता नहीं है महज देखता ही है। विमेंट तब थोड़ा और आग बढ़कर देश की गरीबी भुखमरी, अनैतिकता की वतमान स्थिति भी उसके सामने रखता है। वह बंगाल के उस ऐतिहासिक दुर्भिक्ष की बात भी करता है जब अत्यधिक सकट होने पर भी देश म स्वाधीनता इतना महगा नहीं हुआ था। महगाई और अनैतिकता की आज की सी स्थिति पहले या दूसरे विश्वयुद्धों के समय भी कहाँ थी? अभावों की आज वाली अवस्था तो तब भी न थी जब देश का शासन, द्रव्य और उत्पादन भी अपना नहीं था। तभी ही स दर्भों म विसेंट जब माया म क्रान्ति की बात करता है तो यह भी स्पष्ट कर देता है कि माया! बस यही एक माग है जो हम सुख और समृद्धि दे सकता है—क्यों है वह

स्वय भी ठीक से नही कह सकता ? वसे वतमान काल के इतिवृत्त को जो एक तटस्थ भावना से समझा जाय, तो आज का मनुष्य अपने इस देश के सदभ में एसी किसी क्रान्ति की बात को ही एक सहज हल के रूप मे प्राप्त करता है। आज के इतिवृत्त के स दभ म एसी हिंसा और हत्या ही अनिवाय और उपादेय मालूम पडती है। आज जो ऊहापोह, जो द्व द्व और हलचल हर आदमी अपन अ दर अनुभव करता है वही नतिक लगती है। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह या तो आत्म छलावा है या फिर मनुष्य की एक स्पष्ट दुवलता।

मार्था विसे ट को वादा देती है सहयोग का, और तब विसे ट इस सम्पूण क्रिया की योजना (प्लान आफ एक्शन) समझा देता है। विसे ट से मुक्त होकर ही तब मार्था अपने आप मे आती है, अनगल बातें को भूलती है और अपन जरूरी कामों को फिर से याद करती है। एम्पायर स्टोस मे जाकर हेम त के मित्र गोविन्द शमा स उसके समाचार पूछती है। वह माथा को मिलकर बहुत खुश होता है, उसे सूचना देता है हेम त क एक पत्र की जिसम उसने जमनी से स्वदेश लौटकर यहा क अपने एक बहुत ही सीमित समय के सक्षिप्त से काय-क्रम के बार मे उसे लिखा होता है। उसी सक्षिप्त कायक्रम मे मार्था स सिविल मरिज करने का भी एक आइटम है जिसके लिए शर्मा मार्था को बधाई देता है। हेमन्त ने शर्मा को लिखा होता है कि वह मार्था को इस सब की सूचना फिलहाल इसलिए नही देता है कि अन्यथा वह इस सूचना का सुख नही भोग सकेगी। शादी करने क बाद कुछ दिन स्वदेश रहकर हेमन्त अपनी उच्चतर ट्रेनिंग के लिए मार्था को भी अपने साथ अमेरिका ल जाएगा। इसक बाद जब वे दोनों लौटेंगे तो उसको मार्था अभी की तरह अपनी फक्ट्री की रिसेप्शनिस्ट ही नही रहेगी वह लम्बी चौडी साफ सुथरी किसी फक्ट्री के मालिक या मनेजर की पत्नी

होगी। उसकी कारें होंगी। एक दो बगले होंगे। चौबीसों घण्टे उसकी सेवा के लिए उसके नौकर होंगे।

हेमन्त के मित्र गोविन्द शर्मा की इन सूचनाओं से मार्था फिर खो गई है। मार्था को दुख है तो बस एक बात का कि उसके सुख के ये क्षण अभी के क्षण क्यों नहीं है! भविष्य तो सभी के लिए ऐसा ही सुन्दर, आकर्षक और सुखद होता है या हो सकता है।

और जब मार्था के मन की व्यग्रता बहुत अधिक बढ़ जाती है तो वह रोज की अपेक्षा आज जल्दी ही फैक्ट्री की तरफ न जाकर बड़े डाकखाने की तरफ चली जाती है। डाकखाने के हैड पोस्टमास्टर अकल बाबू मार्था को देखकर बहुत खुश होते हैं। उसकी और उसके पापा की कुशलक्षेम पूछते हैं तब आलमारी से एक पार्सल निकालकर देते हुए कहते हैं—'बेटी मार्था! रोज सोचता हूं शाम को तुम्हारे पापा से मिलने आऊंगा तो यह पार्सल तुम्हें दे दूंगा मैंने सम्हालकर ही अपने पास रख लिया है इसे। जर्मनी से हेमन्त ने तुम्हारे लिए कोई सौगात भेजी है क्या?

और तब एक बार फिर पापा की कुशलक्षेम पूछकर मार्था को बिदा कर पोस्टमास्टर अकल बाबू छप छपाए फार्मों में कुछ लिखने लग जाते हैं। मार्था पार्सल लेकर लौट आती है। उस दिन शायद वह बहुत अधिक खुश है तभी फैक्ट्री की छुट्टी कर वह घर चली आती है।

हेमन्त ने अपनी मार्था के लिए ढेर सारी सौगातें भेजी होती हैं कुछ कपड़े एक पाकिट ट्रांजिस्टर सेट और और भी तरह तरह की कई अन्य चीजें। उसे उन सबको अच्छी तरह देख लेने की भी फुरसत

नहीं है कपडे मे लिपटे लिफाफे म ही जसे उसका सब कुछ है। वसे हेम त की उस चिट्ठी में वही सब बाते ही तो होती हैं जो मार्था ने उसक मित्र गोविन्द की चिट्ठी म अपन लिए दखी होती हैं। मगर तब भी आज इस चिट्ठी स माथा को शर्मा की चिट्ठी की अपेक्षा अधिक सुख है। आज उसका रोम रोम बोलना च हता है। उसे लगता है जसे उसे अपने मन की बात अच्छी तरह खोलकर किसी को कह देनी चाहिए। उसे सामने स आती हुए फ्रेनी दिखाई पडती है। वह जब अपनी दीदी स चाकलेट मागती है तो माथा एकाएक ही फ्रेनी को कधो से पकड कर आगन मे एकदम घूम जाती है तब अपनी बाहा मे भरकर उसे जोर जोर से चूम लेती है—एक, दो तीन, पत नही कितनी बार। फ्रेनी को जब कुछ समझ म नहीं आता तो वह हडबडा जाती है, थोडी शक्ति लगाकर अपनी दीदी के ब धन से मुक्त होती है और एक तरफ खडी होकर एकटक उसे दखती रहती है कुछ ऐसे जैसे उसकी दीदी मार्था पगला गई हो। पापा भी अ दर कमरे म बठे माथा का यह नाटक देखत हैं तो बाहर आकर पूछत हैं— क्या बात है ?

मार्था होश म आती है और सयमित होकर पापा से हैड पोस्टमास्टर अकल बाबू की सारी बाते कह देती हैं ज्यो की त्यों बस एक हेम त वाली बात को पचा जाती है। जब पापा को समझ मे नही आता अपनी मार्था क एसे अतिरिक्त हर्षोल्लास का कारण तो वे यो ही 'पगली कही की कह कर वापस कमरे में लौट जाते है।

उस शाम के पूरे चार घटो तक माथा घर से बाहर रहती है। घर लौट कर खान पान स निवृत्त होकर जब रेडियो से रात की खबरें वह सुनती है तो यकायक उसे अपने कानो पर विश्वास नहीं आता। एक बार फिर देश के उत्तरी पश्चिमी कोने में आग लगी है। आग लगाने वाले वही पुराने आस्तीन के साप होते है जिन्हें वर्षों तक

रहते हैं, और दूसरे दिन जब सुबह होती है तो सूरज की पहली किरणों के साथ ही माथी पास ही के एक रिक्रूटिंग स्टेशन में जाकर उन सैकड़ों के साथ एक अपना नाम भी लिखवा आती है जिनके अन्दर इकलाब होता है मगर अंधा नहीं होता। जिनके अन्दर एक कसमसाहट और तड़पन भी होती है मगर एसी तड़पन होती है वह, जो कि एक अकेले आदमी की न होकर उन सैकडों की होती है जो आज अपने वतन के लिए युद्ध करना चाहते हैं। ●●●

सात

उस रात रह रहकर कौशल को कीट्स की वह कविता याद आ रही थी जिसमें उसने एक ऐसी मायावमयी युवती का चित्रण किया है जो अत्यन्त निर्दय थी। कविता के नायक 'नाइट' की भाँति समझा तो वह स्वयं उस युवती की तलवार से मारा जा चुका है ऐसा नहीं कहा? अब तो वह उस भयावह गुफा के अन्दर लाया जाकर हमेशा के लिए बंदियों से जकड़ कर रख दिया गया था। रजत बाबू और मीरा के सम्बन्धों के प्रकाश में सोचते हुए कवि कीट्स के विशिष्ट स्त्री चरित्र के अनुभवों की ईमानदारी को नई अभिव्यक्ति को मन ही मन प्रमाणित कर रहा था। साथ ही उसे रह रहकर मीरा के व्यवहार पर भी क्रोध आ रहा था। उसकी स्थिति भी क्या कीट्स के किसी 'नाइट' से कम नहीं थी। यदि वह जानता कि मीरा ऐसी होगी तो क्या वह आज रजत बाबू के (जिनसे वह प्रेम करता था और मीरा जिनकी की सगी बहन थी) आज की स्थिति तक विच-लित होने देता?

आज की डेढ घण्टे की चाय और बहस के बाद ही से रमण (शायद) हमेशा के लिए मीरा से 'गुडनाइट' कर आया था। झगडा कोई नही हुआ था दोनो के बीच झगडा होने का वसे कोई कारण भी नही था, मगर महज मान्यताओं के अन्तर के कारण ही पिछले दो ढाई सालो के गहरे सम्बन्ध आज यों इतनी आसानी से तोड दिये गये थे। इधर एक तरफ रमण शीघ्रता मे उठाये गये अपने इस कदम को यथोचित ठहराने के लिए मन ही मन डूब रहा था, उधर दूसरी तरफ मीरा को भी रमण की इस बात पर विश्वास हो नही होता था कि रमण जैसा बुद्धिजीवी भी महज मान्यताओ के अन्तर के कारण ही हमेशा के लिये इतने अच्छे सम्बन्ध ऐसी आसानी से तोड गया। प्रश्न सिर्फ वाद विवाद का ही तो था।

अपने काम से लौटते हुए सारे रास्ते भर मीरा यही सोचती चली आ रही थी निरी भावुकता म पैदा हो गई व्यर्थ की इस परेशानी मे उसका सिर दर्द करने लगा था। वह कोशिश करके भी आज की इस सारी घटना मे अपनी तरफ से की गई या अज्ञान म हो गई कोई ऐसी गलती नही ढूढ पा रही थी जिससे रमण को यह सब करने को बाध्य होना पडता अथवा उसे ही और दिनो की भाँति माफी आदि माँगने की जरूरत पडती।

घर आई तो किसी भी काम मे उसका मन नही लग पा रहा था वह सोच रही थी—रमण भावुक है जरूर, मगर बुद्धिवादी पहले है। उसने आज तक कभी भी मीरा के भावुकता या आवेश म किये गये किसी काम को सराहा नहीं है। तब स्वय कैसे इतनी अधिक भावुकता म बहकर वह सब कुछ कर बैठा है जिसकी दोनो म से किसी को स्वप्न म भी आशा नहीं थी? मीरा ने अपने पापा के बहुत आग्रह करने और अत्यधिक थके होने के बावजूद भी चाय नही पी। उसकी

तबियत के बारे में पूछने आने वाली अपनी छात्रा बहिन को भी नाक कर अपने कमरे से बाहर निकाल दिया और और दिनों की तरह अपने मित्रों के फोन पर आने वाले को म म न व को भी रिसीव नहीं किया।

उस लग रहा था—थोड़ी र रो लेती तो शायद उसका जी हल्का हो जाता। मगर कारण क्या था रोने का वह समझ नहीं पा रही थी। मीरा सोचने लगी—यदि र मन्त्री का अंततोगत्वा यही परिणाम है तो फिर उन्हीं मित्रियों के नाम पर कुण्ठाओं के नए नए साधन जुटाने की आव यकता क्या है? अपनी मित्रियों के अब तक सभी पुराने स म्भ एक बारगी उसकी आंखों के सामने हू के सपनों से तर गय। प्रि स जयबहादुर सिंह डाप्ड। राजीव रिसर्च स्कालर – ड्राप्ड। मातादीन—आर्टिस्ट पोएट ड्राप्ड। और अब रमण शाह—नावलिस्ट ड्राप्ड नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता। उस बार बार रमण के श द याद आ रहे थे— मीरा! मैं कभी तुम्हारा मित्र था, अब तुम्हें प्रम करता हूं। मैं तुम्हारे और मित्रों की ही तरह तुम्हारा भाई साहब या फ्रेंड रहते हुए ही तुम्हें 'प्रम' नहीं करना चाहता कारण कि प्रम निश्चित रूप से एक दूसरे से शारीरिक सतुष्टि की मांग करता है। प्रम का अस्तित्व ही देह की कल्पना से है मगर मीरा! तब भी मैं तुमसे कभी भी एक ऐसे प्रत-तिक प्रम की अप रा नहीं करूंगा जिसके कारण आज तुम्हारा मन धीरे धीरे आदमी की सारी जात से घृणा करने लग रहा है। तुम प्रम को वासना समझती हो इसीलिए एसी मित्रता ही तुम्हारी कल्पना में आदर्श सम्बन्धों की अभिव्यक्ति है उससे अ ग शायद और कुछ नहीं है। मैं प्रेम को वासना अवश्य मानता हूं मगर जीवन की इस यथार्थ और मूलभूत आवश्यकता के प्रति सजग हुए बिना आदमी रह नहीं सकता।

जीवन की इस मूलभूत आवश्यकता के प्रति भी जो विवकशील है वही नतिक प्रम की बात समझ सकता है अन्यथा तो प्रेम वासना है ही मीरा ! उस दृष्टिकोण से यदि हम दोनो तुम्हारी वाली 'मित्रता' के साथ साथ मेरे वाला प्रेम भी कर सकें मेरी माग के प्रति तुम सहज रूप से उत्तरदायी (रसपार्सिव) हो सको तब तो ठीक है अन्यथा इसके अतिरिक्त फिर प्रेम या मत्री के नाम पर चलने वाली एक लम्बी कुण्ठा पाल रखने मे क्या अथ हो सकता है ?'

डेढ घटे की लम्बी बहस के दौरान रमण की इन बातो मे मीरा को अवश्य ही उसकी भावुकता मे भी बुद्धिवादिता की झलक मिली थी मगर वह इस सब का जवाब क्या देती ? रमण के सामने बठी वह सोच रही थी— क्या ऐसी बातो के जवाब भी होते हैं ? यदि नही तो फिर रमण इतना साधारण मानव होते हुए भी साथ ही एक आदर्श मानव क्यो बना रहना चाहता है ? वह समझता क्या नही है ? उसकी मीरा के लिए यह बात जरूरी क्यों हो जाती है कि वह उसकी ऐसी शकाओ का कोई मौखिक उत्तर दे ही ? उसे अपने प्रेम पर विश्वास क्यो नही है ? उस मीरा की मत्री वाली बात का मम समझ मे क्यो नही आता है ? रमण इस डर से ही क्यों आदर्शवादी बना रहना चाहता है कि उसके द्वारा मीरा से सेक्स तुष्टि की माग करने पर मीरा अपने और मित्रो की तरह उसे भी चरित्रहीन कहेगी, कि उसमें भी हमशा के लिए अपने अच्छे सम्बन्ध तोड लेगी ?

मीरा एक सतक नारी है अवश्य लेकिन वह भी तो एक नारी है— जिसके पास तीस साल पुराना हाड मास का एक शरीर है, एक छोटा सा महत्वाकाक्षी मन है।

उसने बिस्तर से उठ आकर रमण से 'कांटक्ट' करने के लिए फोन पर डायल किया रमण की मकान मालकिन, और पडोसिन

सुनीता ने, मीरा को फोन पर लौटाकर सूचना दी थी कि रमण घर पर नहीं था।

रमण रास्ते में ही एक कफे में रुक गया था। अपने सामने नाचते रंग बिरंगे जोड़ों में उसे कठपुतलियों की शक्लें नजर आ रही थीं। एक दूसरे की कमर में हाथ डाल कर जाज की उठती गिरती धुनों के साथ थिरकते पैरों में, उसे एक मशीनी सभ्यता का आभास हो रहा था। नारी अपने आप में एक कितना बड़ा छल है—प्रवंचना की प्रतिमूर्ति। बड़े हाल में डांस करती हुई पार्टनर में उसे हिन्दुस्तानी मीरा (भले ही वह क्रिश्चियन पारसी या फ्रेंच हो) दिखने लगी थी जो ऐसे हर प्रेम के विचार मात्र से ही बिफर जा सकती थी जिसका अस्तित्व देह की कल्पना से है। जिसे कमर में हाथ डालकर संगीत की धुन के साथ थिरकने वाली ऐसी हर मैत्री से आसक्ति थी जो स्वयं में एक यथार्थ नहीं थी लक्ष्मण-रेखाएं बांध कर कब तक मन के शाश्वत और चिर जीवित रावण को रोका जा सकता है? वह सोचने लगा था—मीरा की वह मैत्री क्या थी, जिसमें एक दिन जबकि उसके भाई ने उन दोनों के प्रेम सम्बन्धों का विरोध किया था वह सिसकियां भर भर कर रोई थी। रोते रोते ही रमण से उसने कहा था—'रमण! आनन्द की बात का बुरा मत मानना सारा दोष मेरा ही है जिसकी वजह से तुम्हें परेशानी हुई है मगर प्लीज! भगवान के लिए और मेरे लिए तुम इस सब का बुरा मत मानना मैं तुम्हें चाहती हूं तुम्हारी मित्रता के बिना मीरा जिन्दा नहीं रह सकती। तुम मेरे मित्र हो और हमेशा रहोगे

रमण ने तब तो उसे सान्त्वना दी थी और बुरा न मानने का आश्वासन भी मगर उसे मीरा की मैत्री का वह रूप भी एक स्पष्ट धोखा दिख रहा था। मीरा के जीवन का यह छल उसकी दीनगी

विवशता अथवा आवश्यकता हो सकती थी ? यही न कि एक विजातीय रमण को ग्रहण करना यदि उसके लिए असम्भव नहीं तो कठिन जरूर था, कि रमण को पाने के लिये उसे सम्भवतः अपने पूरे परिवार से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना होता था।

रमण कैफे से उठ आया। सड़क की भीड़ में या तो वह अपने आपको खो देना चाहता था, या फिर एकदम उससे ऊपर उठ कर सीधा घर पहुँचना चाह रहा था। मीरा को अब वह भूलना चाहता था मगर उसे हर क्षण हर पल में मीरा नजर आ रही थी। बगले के कम्पाउण्ड में आकर अपना कमरा खोलने के लिए रमण ने ज्यों ही चाबी निकाल कर लाइट जलाई, मीरा को कमरे के बाहर के बरामदे के एक कोने में सिमटी बैठे सिसकते हुए पाया। ●●●

आठ

कविता के सहवास का हर क्षण कमल को मुश्किल और कष्टसाध्य लग रहा था। वह अपने आपको उसके सामने टेबिल पर बैठे आज कितना अधिक अस्वाभाविक महसूस कर रहा था। उस आश्चर्य या ऐसी अस्वाभाविक स्थिति में बैठे अपने आप पर और अपने सामने गुमसुम बैठी कविता पर। उसके हर प्रश्न का उत्तर वह ऐसे दे रही थी जैसे बहुत जरूरी हो अन्यथा वह चुप रह जाती। एहसान करने जैसा कोई भाव यद्यपि उसकी बातचीत में नहीं था लेकिन तब भी पारस्परिक बातचीत में सबको दोनों की सी दूरी अथवा किसी एकदम से अभी-अभी हुए हुए परिचय का सा एक आभास कमल की खीझ और झुंझलाहट को और बढ़ावा दे रहा था। कमल की समझ में नहीं आता था—एक रात में कविता इतनी कैसे बदल गई? यौवन का वह उन्माद, वह मस्ती, वह पुनर्मूल्यांकन जो उनके संबंधों की निकटता और घनिष्ठता का स्वाभाविक परिचय था कविता से कौन छीनकर ले गया? वह क्या अब हर बार के

निश्‍चय स्वीकार किए जा रहे है ? वह क्यो नही कहती —उसे लस्सी या मिल्कशेक नहीं पीना और रेणु की तरह वटर को बुलाकर क्या वह स्वय ग्रोरेंज स्क्वश या पाइनएपल का आडर नही देती ? कमलके साहित्य, कला अथवा सगीत के विषय के हर गलत या गलत लगने वाले प्वाइंट पर आने वाला उसका व्यक्तिगत विरोध आज क्यो सक्रिय नहीं है जिसके कारण कमल न उस सदा चाहा है। अपने पारस्परिक सम्बन्धो के पिछले चार सालो के हर दिन की याद उसके मन और मस्तिष्क मे आज भी एकदम ताजा है। अपनी तरफ से कविता आज कुछ भी नही बोल रही थी। उसकी ऐसी अ तमुखता और गम्भीरता का अर्थ समझने के लिए इधर उधर के सारे कारण कमल जोड़ने की कोशिश कर रहा था।

जब दोनो खा पी चुके तो काउण्टर के नजदीक आकर कविता ने अपना वेनिटी बग खोलकर उसमे से पस निकाला। जब कमल ने कहा —'कविता तुम नही मै पे करूगा। तो 'अच्छा' कहकर वह अत्यधिक सहज भाव से बाहर की तरफ सरक आई थी।

कविता के इस अच्छा से कमल का रहा सहा धय भी उसम से जाता रहा। वह कफे स बाहर आकर कुछ क्षणो तक इस बात की प्रतीक्षा मे रहा कि कविता स्वय ही अपने लिए कोई रिक्शा ठीक करले और चली जाय मगर जब फुटपाथ तक आकर कविता ने कफे के प्रवेशद्वार की ओर मुह किया तो कमल भी उसके पास तक आ गया।

कविता'—कमल ने कुछ पूछना चाहा था, मगर तभी एक रिक्शे वाल ने आकर उन्हें डिस्टब कर दिया था। कमल ने रिक्शे वाले को नही कहकर टाल दिया था और दोनो बिना कुछ तय कि ही विलिंगडन रोड से बनारस टावर की तरफ निकल आये थे

पलेवस पिक्टोरियल्स और खादी भण्डार के प्राकपक दो दिनो जसे ही तो थ वरना तो कविता अवश्य ही उनक दि क्र्ती खादी भण्डार के ग्र दर चलकर कुछ देख आने करती। मगर क्र्ा और क्यो उस तो जस आज एक साथ साथ सूघ गय थे।

'रिवशा लेलें, कविता ' कमल ने प्रश्न करन प्रश्न किया।

'ऐखलीजिय।

क्या दरगूृ ! तुम्हारी राय है ?

••

कविता का घर नजदीक आता देखकर कमल मोड लिया था और जब बोला कि रेजीडेन्सी स हाल हू' कविता निर्विरोध ही उसके साथ चल दी थी।

कविता !

"हा कमल !!"

मैं जानना चाहता हू कविता कि कल शाम बिछुड कर तुम कहां गई थी ? किन किन नम्बरों पर तुम थी और तुम्हारे फ ेडस म से कौन कौन तुमस मिलने आय,

मरा एगजमेन्ट हो गया है कमल ! महमन्ड फोरेस्ट आफिसर है। इसी स डे को आफर वे अपनी स्वी शादी की तारीख तय कर जायेंगे।

और तब कविता इसके बाद फुटपाथ पर पड़ी एक कुर्सी पर एकान्त स एक बठ गई, जस उसकी सारी दा

हो गई हो। उसकी मुद्रा देखकर कमल को लगा जसे वह अभी अभी हो षाड मारकर रो पडेगी। जब कमल ने उसके निकट जाकर अपने हाथ से बाधकर उसे उठाया तो एक अत्यधिक सयत और निर्णयात्मक म स्वर में वह बोली— मेरे अकल और आण्टी अपने किसी पुराने कज के लिए मुझे चार हजार म उस गूसट को वेच रहे हैं। शायद उन पर कुड़की आ रही है। कमल ! आज रात को क्या तुम मुझे बाहर ले चलोगे यहा से ?"

कमल के मन म क्षण मात्र के लिए एक बिजली सी कौंधी और तब उसके एकदम बाद ही उसके अन्दर से कही जसे कोई फ्यूज सा उड गया। कविता की इतनी देर की अन्यमनस्क स्थिति का कारण कमल को अब समझ में आ गया था। इस बात का कारण समझने में भी कमल का अधिक समय नहीं लगा कि आज स्वय कविता ही ने अपनी तरफ से चलाकर उससे कुछ देर का समय फोन पर लिया था। उन दुरूह क्षणो म कमल ने चाहा सच ही व दोनों एकदम उड़कर कहीं दूर बहुत दूर चले जाते—मगर कहा ? उसने कई दूसरे विकल्प भी सोचने चाहे कविता की इस समस्या क, मगर उसके दिमाग में तो जसे सीसा भर गया था। चार हजार की रकम भी तो कोई छोटी रकम नहीं थी। तब उसे धीरे धीरे एक एक करके कुछ ऊट-पटाग विचार भी आए। कुछ देर को उसे अपने होस्टल के रिंगलीडर रघुबीर का भी ध्यान हुआ जो कविता के नाम पर जान देता था और जिसने कभी कमल को कविता के सान्वास का अवसर दिला देने के लिए कोई भी रकम देने की बात कमल से कही थी। कमल तब नाहक ही उस पर उबल पडा था और सारे कॉलेज में एक हगामा सा मच गया था। कमल को लगा जसे अन्दर और बाहर से वह एकदम खाली हो गया है।

आज बहुत दिनों बाद किशन राधा के सोने के कमरे में आया था और उसके साथ आई थी उसकी राधा के लिए ढेर सारी भेंटें। जिनमें साड़ियाँ थीं, ब्लाउज पीस थे, आज शृंगार का सामान था और इन सब के अतिरिक्त सोने के कुछ आभूषण भी थे। पुखराज की एक अंगूठी, सच्चे मोतियों का एक जड़ाऊ हार और कानों के बुन्दे। सभी चीजों में जो ऊपर से दिखने वाली एक सामान्य बात थी वह थी लाल रंग की प्रधानता। यह लाल रंग शायद किशन के मन में बसे राधा के प्रति प्रेम का सूचक था, जो इतने दिनों बाद आज इस तरह प्रकट हुआ था।

उस रात राधा फिर किशन की होकर रही। हरिकान्त का विचार उसके लिये जैसे गूंगा होकर रह गया था। और उसका किशन अभी अभी कुछ घन्टों पूर्व ही उसे जैसे कोसों दूर धकेलकर आया था। किशन की प्रसन्नता थी उसकी राधा उसे इतना अधिक चाहती थी।

मगर हर रात के बाद एक सुबह भी आती है। और वही सुबह जब दूसरे दिन भी आई तो राधा फिर शरीर की कसमसाहट ऐंठन मन की दुर्भावना और वही पुराना पट का दर्द लेकर उठी जो हमेशा उसे हरिकान्त की याद दिलाया करता था। उसे रात की बातें याद कर कर के एक घोर पश्चाताप हो रहा था कि क्यों कल उसने फिर किशन को अपनी वह रात दी कि क्यों कल रात उसने फिर दो खूनों में एक तीसरा विदेशी खून मिल जाने दिया। और वह घन्टों सुबक सुबक कर रोती रही अपने हरिकान्त को याद करती रही।

और फिर उसी याद में आगे के पांच महीने भी बीत गये। अब तक राधा का शरीर बहुत ज्यादा बदशक्ल होकर इधर उधर फैल गया था। उसने हरिकान्त को इसी बीच में पांच छः पत्र और भी लिखे थे जिनका जवाब उसे मिला नहीं था। शायद वह वहां से बदली होकर

कही और चला गया था या फिर उसने दिल्ली में ही कहीं शादी करली थी। राधा ने यह भी सोचा था—शायद अब हरिकान्त उसे भूल गया है।

मगर राधा तो तब भी हरिकान्त को भूली नहीं थी। उस दिन अप्रल की ६ तारीख को राधा का पेट दर्द इस कदर बढ़ा कि राधा को लगा जैसे उसकी जान लेकर ही जायगा लेकिन उस रात राधा के उस दर्द ने उसकी जान लेने की बजाय उसे एक और नई जान दी थी राधा के लड़का हुआ था, और किशन उसका बाप बन गया था।

पुत्र जन्म की खुशी घर में कई दिनों तक एक सी रही और जब लड़के की छठी हुई तो सभी लोगों ने राधा और किशन को बधाइयां दी। किशन और राधा के भाग्य को सराहा उनके सुखी दाम्पत्य जीवन की मंगल कामनाएं की। सबने कहा किशन के लड़के की सूरत कितनी अच्छी थी लेकिन घर में और उसके परिवार में वह किसी में भी नहीं मिलती थी। लेकिन इस सब से क्या आता जाता था जो राधा या किशन को प्रभावित करता। किशन राधा की सूरत को जानता था और राधा किशन के इस नव जात शिशु की सूरत को जिसे [illegible] में ६ माह तक एक अजीब दर्द के अलौकिक सुख से रख कर [illegible] हुए राधा ने जन्म दिया था। वह अपने प्यार की इस [illegible] मुखड़ा देख कर निहाल थी उसे देख कर राधा को [illegible] अजीबोगरीब सुकून मिलता था यह संसार की दूसरी [illegible] उपलब्ध था? शायद नहीं था। लेकिन उसके [illegible] केवल एक ही बात सोच रही थी कि अब राधा [illegible] मिल पायगी, जो आज उससे बहुत दूर है जो [illegible] जवाब नहीं देता है और जो शायद उसे भूल [illegible] अपनी स्थिति की तुलना दुष्यन्त के विरह में [illegible]

किसी शकुन्तला की स्थिति से कर रही थी। राधा इस बात के लिये बहुत अधिक लालायित थी कि शारीरिक रूप से सामान्य होकर वह जल्दी ही चलने फिरने योग्य हो जाय ताकि दिल्ली पहुँच कर वह अपने हरिकान्त से मिले और अपने और उसके प्रेम की यह भेंट उसे दिखाये। राधा के मन में हरिकान्त के प्रति जो अनुराग है उसका इस समय में अधिक स्वस्थ प्रमाण और क्या हो सकता है। उसने सोचा हरिकान्त उसको देख कर कितना खुश होगा उसे अपनी बाहों में भर लेगा। उसे फिर साल भर के लिये भूली हुई वह राधा याद आ जायगी जिसके साथ उसने दिल्ली का कोना कोना घूम लिया था। प्रकृति के गर्म और ठण्डे नम और शुष्क वातावरण में वे सैकड़ों कोस इधर उधर तफरीह में भटके हैं। उसे बार बार वह हरिकान्त याद आ रहा था जिसने पिछले तीन साल पूर्व कन्वोकेशन के एक दिन राधा से बिछुड़ते हुए कहा था—राधा मैं तुम्हें चाहता हूँ। तुम मुझे प्राप्त हो सको इसके लिये मैं जिन्दगी भर तुम्हारा इन्तजार कर लूँगा। और ऐसे ही विचारों में वह घण्टों बँधी रहती। अपने शिशु अजय को देखती तो फिर उसे फिर फिर कर हरिकान्त याद आता। वही नाक नक्श वही आँखें और हूबहू वैसा ही ललाट उन्नत और प्रकाशवान। आत्मविस्मृति के ऐसे वे घण्टे दिन बन कर दो मास भी हो गये।

दिल्ली आकर राधा ने जब तक नहाना धोना खाना पी लिया काम हो चुकी थी। वह बाहर जाने के लिए तयार होने लगी। शीशे में देखते अपने बिम्ब में अपने सौन्दर्य और यौवन की ताजगी को क्षण भर के लिए देखती ही रही। तब अजय को लेकर बाहर निकली और हरिकान्त के घर के लिए रवाना होगई। रास्ते भर वह अपने अन्दर स्नायु दौर्बल्य की सी कोई प्रतिक्रिया अनुभव कर रही थी। रिक्शा तेज दौड़ता था तब भी राधा के ललाट पर पसीने की बूँदें थी। हरिकान्त

के घर पहुँच कर घंटी बजा कर अपने बाहर होने की सूचना जब उसने दी तो दरवाजा खुला। सामने कोई नवयुवती थी—प्रश्न सूचक दृष्टि से बाहर खड़ी राधा को देख रही थी। हरिकान्त के स्थान पर उसके कमरे में एक नवयुवती को पाकर राधा के मन का सारा उत्साह जाता रहा। वह लौटना चाहती थी बिना कुछ कहे सुने ही मगर जब उस नवयुवती ने अपनी जिज्ञासु दृष्टि को शब्द दिये-आप किससे मिलना चाहती हैं। तो राधा ने हरिकान्त के विषय में पूछा। नवयुवती अन्दर गयी और बाहर आकर एक परचा देते हुये राधा से बोली—"६ ७ महीने हो गये उन लोगों ने मकान बदल लिया है। वे अब विनय नगर में रहने लगे हैं।

— अच्छा' कहकर राधा लौट आयी और बाहर सड़क पर कुछ दूर चल कर उसने विनय नगर के लिए एक स्कूटर फिर ले लिया। आज पहाड़गंज से विनय नगर कितनी दूर हो गया था—राधा को लगा। स्कूटर में बैठी वह सोच रही थी ये खट्टी खट्टी सी डकारें उसे क्यों आ रही हैं। क्या उसे दुरपच हो गया है या फिर पेट की वह गड़बड़ वर्तमान स्थिति से पैदा हुए उसके स्नायुदौर्बल्य में थी।

स्कूटर वाले को हरिकान्त के पते का परचा उसने दे दिया था। वह शायद वह स्थान जानता था इसलिए पते का पता करने के लिए उसने राधा से 'अच्छा' के अलावा और कुछ नहीं कहा था। गंतव्य पर पहुँच कर राधा ने स्कूटर वाले को पैसे दिये और उस प्लेट का बरामदा पार कर एक कमरे के बाहर लगी नाम की तख्ती को पढ़ा डा० हरिकान्त एम ए। वह दरवाजे के दाहिनी तरफ लगी घंटी बजा कर एक तरफ खड़ी हो गयी। स्कूटर में हवा लगने से संजय उसकी गोद में सो गया था। संजय को यों सोता देखकर उस उस पर प्यार आया और उसने उसे चूम लिया, उसे फिर हरिकान्त याद आ रहा था

ग्यारह

पिछली बार जून में मिला था अपनी रश्मि बहिनजी से तब काफी साफ सुथरा था उनका कमरा। फर्श अच्छा सीमट किया हुआ, खूँटी पर दो साड़ियाँ एकदम साफ पलंग पर एक दूधिया चादर जिसके चारों कोनों पर कशीदाकारी का थोड़ा सा किन्तु अद्भुत कौशल सामने एक आले पर कुछ पुस्तकें रखी हुईं—छोटी कसाया, कुछ कापियाँ भी दूसरे में एक सरस्वती का चित्र कालगट का केश तेल और माझू शाजू दो चित्र—एक उन्हीं का एक मेरी सगी बहिन करुणा का।

गया तो स्कूल जाने की तैयारी में थीं मगर मेरे पहुँचते ही स्कूल से छुट्टी की एक दिन की दरख्वास्त भिजवा दी और बोलीं—"कब आये जयपुर से?" मैंने कहा— आज ही अभी।

अच्छा! मैंने छुट्टी ले ली है स्कूल की यहीं नहा धोकर खाना पीना है।

और तब बिना मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये ही स्टोव जलाने में लग गई थी। यह जानते हुए भी कि यहां आकर मैं अपनी नानी के यहां ठहरा हूं और नहाने धोने पहनने आदि का सारा सामान मेरा वहीं है। मगर मैं जब तक यह कुछ सुनकर प्रतिवाद के लिए तैयार हो पाता उन्होंने मेरे लिए गरम पानी नहाने के लिए तयार कर दिया था और अपनी टुक में से एक उजला धुला हुआ तौलिया निकाल कर मेरे सामने खड़ी हुई थी। बोली— अरे अभी तक यहीं खड़े हो। जाओ, बाथरूम में जाकर नहा धो लो। फिर बात करूंगी तुमसे। करुणा की, तुम्हारे जयपुर की।'

मैंने तब भी जब बोलने की कुछ कोशिश की तो वे पहले ही बोल पड़ीं— मैं तुम सबका स्वभाव अच्छी तरह से जानती हूं, एक से एक बढ़ चढ़ कर हो। तुम पांचों के पांचों भाई हो ऐसे हो। मैं तो जब भी तुम्हारे यहां आती हूं जबरदस्ती ठूंस ठूंस कर खिला पिला देते हो। क्यों भला ?'

रश्मि बहिनजी एक स्कूल में अध्यापिका थीं। दस साल पहले जब मेरी बहिन ने हिन्दी की एक परीक्षा दी थी तभी से इनका और उनका परिचय था। और फिर तो बस दांत कटी रोटी ही हो गई थी—एक सा पहनावा, एक सा खाना पीना और घर छोड़ कर दोनों का रात दिन एक साथ रहना।

आज जब उनसे मिला तो कुछ और ही बात हो गई थी। तीन ही साल में एकदम इतना अन्तर! पिछले साल से जब मेरी नौकरी यहां हो गई है उसी दौरान में जब कानों में भनक पड़ी थी कि रश्मि ने दूसरी शादी करली है लगभग पन्द्रह बीस वर्षों का वयस्क

चार पौधे अव्यवस्थित रूप में स्वत ही बढ़ रहे थे जसे वायव्य ईशान एक डोरी तार की बधी थी जिसमें कुछ कपडे सूख रहे थ—जनाना भी, मरदाना भी। मुझे कपडो को देख कर रश्मि बहिनजी का जून का देखा हुआ वह पुराना कमरा याद आ रहा था जिसमे सफाई और सफाई क अतिरिक्त जसे और कुछ था ही नहीं। साडियाँ एकदम साफ सूखी मगर यहाँ य धुले हुए कपड़े भी इतने साफ नहीं दिख रहे थ। एक बनियान एक अण्डरवीयर एक प'ट, एक कमीज—सब मर्दाना और उनक अपने कपडो के नाम पर महज एक साडी और चोली। "मैंने क्षणिक रुक कर साचा—तो, अब रश्मि बहिनजी का अपनापन गया। —गया नहीं बढ गया संकुचित था पहल अपने तक अब बढ गया एक अपने और तक भी।

चुपचाप अन्दर ल गई तो कुछ अजीब सा लगा। जून वाल उनके कमरे की सफाई का एक अंश भी यहा था नहीं। चारो तरफ मक्खियाँ भिनकी हुई। कपडे अव्यवस्थित एक कमरे को दो बनान क लिए बीच म लगाए पर्दे के नीचे का किनारा भी गन्दगी का हाथ पोंछा हुआ होने के कारण मला था। एक टेबिल पर जिस एक मल सफेद चादर से ढका हुआ था एक रेडियो सट पडा था। रेडियो सेट की बगल म एक टबल लम्प। मेरी कुर्सी के पास ही मेज पर वहीं ही रेडियो क पास एक छोटी दैनंदिनी पडी थी जिसम आदमी क हाथ स अग्रेजी मे लिखा हुआ था "श्रीमती रश्मि देवी गुप्ता।' वे आजकल गुप्ता हो गई थी।

नहीं चाहता था कि व मेरी वस्तुओं को इस गहराई स देखने वाली बात को ताड जाय मगर तब भी वे ताड गई। बोली— "अजीब अजीब सा लग रहा है न तुम्हें यहा आकर" — फिर

एक ठंडी सांस भर ऐसे बोली जैसे मुझे एक अतिथि के रूप में ग्रहण करने का उनका सारा उत्साह समाप्त हो गया हो — हां, लगना ही चाहिए।'

मुझे अफसोस तो हुआ अपनी इस मजबूरी का मगर क्या करता ? तब भी कुछ तो कहता ही। बोला— नहीं तो ऐसी क्या बात है ? तब वे अन्दर चली गई। मैं देखता रहा–रेडियो के पास वाले छोटे आले को जिसमें कुछ दवाइयों की शीशियां रक्खी थीं कास्टर के तेल की भी एक शीशी, जिसमें बाहर की तरफ तेल लगा था। और बच्चों के खिलौने। हां बच्चे वाली बात मुझे तब याद आई। मैं अन्दर चला गया तो बच्चे को अच्छी तरह से कर रही थी। लेटे लेटे ही उसने टट्टी करके सारे कपड़े भर लिये थे। बोली—"देखो न कितना गन्दा है ! क्या बताऊं दिन रात तंग करता है, जरा भी चैन नहीं लेने देता। अभी तो बीमार है न। वे दवा लेने गए हैं इसकी। आते ही होंगे ?

तब काफी देर तक जयपुर की, मेरी करुणा दी की बातें वे करती रहीं। बताया—जयपुर उन्होंने करुणा दी को दो तीन पत्र भी दिये थे मगर वो तो आज कल मुझसे घृणा करने लगी है। पत्र का जवाब देना तो दूर, यहां आई थी कुछ दिनों पहले तब भी मिली नहीं थी।

लेकिन मैंने अपनी बहिन के सम्बन्ध में की गई बातों की सफाई हर तरह से देने की कोशिश की। काफी प्रयत्न किया उनको यह समझाने का कि उन्होंने जो कुछ किया है अच्छा ही किया है–इसमें घृणा करने जैसी तो कोई बात हुई ही नहीं। तब भी उन्हें विश्वास नहीं हुआ, मेरी बात को अभिप्राय में लेने का। बातें करते करते ही

बच्चों को सुला कर हलुवा बनाने में लग गई। मैंने जब वैसे ही निरी औपचारिकतावश ही कह दिया कि मैं तो अभी खा पीकर ही आया हूँ—कुछ भी नहीं खाऊंगा तो जान सी ही गई। शायद उन्हें बहुत बुरा लगा था। इसलिए वह दर ही अन्दर रोने सी लगी दूसरी तरफ मुंह छिपाकर। लेकिन बाद में मुझे भी उसी औपचारिकता दिखाने का काफी पश्चाताप हुआ था।

उनके श्रीमान् जी आए और मैं उनसे भी थोड़ी सी बात करके हलुवा खाकर चला आया—रास्ते भर अपनी सामाजिक कमजोरी हमारी अनुदार मान्यताओं इन सबकी शिकार—अपनी रश्मि बहिन जी के बारे में सोचता हुआ चला आया जिन्होंने अपने स्वयं के जीवन सुधार के लिए समाज की कुछ रूढ़ मान्यताओं में सड़न की कोशिश की थी। समाज के अन्य लोगों पर जिसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था उनको इस छोटी सी बात पर फिर उनके मां बाप ने भी हमेशा २ के लिए सम्बन्ध तोड़ लिए थे। किसी का बाप जिन्होंने मारा नहीं था, किसी को बुरा भला कहा नहीं था तब भी किसी ने उन्हें सहानुभूति नहीं दी। उनके अपने जीवन के सम्बन्ध में किए गए उनके साहस को किसी ने सराहा नहीं।